प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार १९५९
मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
सत्यपाल ववन,
दी सेंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस,
दिल्ली

प्रकाशकीय

हमारा प्राचीन साहित्य बडा ही समृद्ध है। जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नही, जिसपर उसमे प्रकाश न डाला गया हो और जिसपर उसके द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त न होता हो। वस्तुत उसमे जो जितना गहरा जाता है, उतने ही रत्न उसके हाथ पडते हैं।

प्राचीन साहित्य मे शिक्षा का एक प्रभावशाली माध्यम कहानी के रूप मे मिलता है। छोटी-बडी अनगिनत कहानिया मणियो की भाति उस सारे साहित्य मे चमकती हुई दिखाई देती हैं।

इस पुस्तक मे वैदिक साहित्य की चुनी हुई कहानिया दी गई हैं। इन कहानियों की सबसे बडी विशेषता यह है कि वे अपने मूल रूप मे दी गई हैं। कालान्तर मे इन कहानियो के कलेवर मे कुछ परिवर्तन हो गया है और सम्भव है कि कतिपय पाठक इनसे परिवर्तित रूप मे ही परिचित हो। इस पुस्तक से उन्हे पता चल जायगा कि ये कहानिया मूल रूप मे किस प्रकार हैं।

इनकी दूसरी विशेषता यह है कि इनमे से कई मे ज्ञान की बातें कही गई हैं तो कुछमे जीवन की व्यावहारिक बातें भी बताई गई हैं। इस प्रकार इनमे सभी रुचियो और स्तरो के पाठको को मनोनुकूल सामग्री मिल जायगी।

इन कहानियो के विद्वान लेखक प्राचीन साहित्य के मर्मज्ञ हैं। उन्होने उसका सूक्ष्म अध्ययन करके इन रत्नो को छाटा है और बडी प्राजल भाषा और शैली मे पाठको के लाभार्थ उन्हे प्रस्तुत किया है।

हमे विश्वास है कि ये कहानिया बड़े चाव से पढी जायगी और जो भी इन्हे पढेंगे, उन्हीको लाभ होगा।

—मंत्री

भूमिका

साहित्य मे कहानी का एक विशिष्ट स्थान है। छोटी-छोटी घरेलू घटनाओ के द्वारा पाठको के चित्त पर जो प्रभाव कहानिया जमाती हैं, वह प्रभाव बडे-बडे ग्रथो के द्वारा भी सपन्न नही किया जा सकता। कहानी का एक तो कलेवर ही छोटा है, दूसरे उसमे रोचकता का प्राचुर्य रहता है। पाठक थोडे ही समय मे मनोरजक घटनाओ को पढ-कर चित्त मे अभूतपूर्व आनद का अनुभव कर लेता है। उपन्यास मे लबी-चौडी घटनाओ के वर्णन की ओर ग्रथकार की विशेप प्रवृत्ति रहती है, परतु वर्तमान सघर्षयुग मे न तो हमारे पास समय ही है और न धैर्य ही कि इन बृहत्काय ग्रथो का अध्ययन कर चित्त का विनोद किया जाय या मनोरजक उपदेश ग्रहण किया जाय। हमारे पास पर्याप्त समय कहा है कि उपन्यासों का धीरतापूर्वक अनुशीलन कर मानसिक विनोद का साधन निकाला जाय ? इसीलिए वर्तमान युग मे कहानियो की ओर इतनी अभिरुचि है। वर्तमानकाल को यदि 'कहानियो का युग' कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। प्रत्येक सभ्य भाषा के साहित्यिक कथा-साहित्य की विपुल सृष्टि कर अपने साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहे हैं। कहानियो के प्रति हमारा अनुराग आगे और भी बढता जायगा, इसकी पूरी सभावना है। क्योकि जीवन का वह सघर्प, जो इनको लोकप्रिय बनाने का मुख्य कारण है भविष्य मे किसी प्रकार कम न होगा, उसके दिन-प्रतिदिन बढने के ही लक्षण दीख पडते हैं।

कहानियो के जनप्रिय होने का एक दूसरा भी कारण है। कथा और

मानव-समाज का घनिष्ठ सबध है। मानव स्वभावत कथाप्रिय है—कथाओ के कहने और सुनने मे विशेष आनद लेता है। हम उस युग की कल्पना नही कर सकते, जब मानवो को आनद देनेवाली कहानियो का उदय न हुआ हो। कहानियो ने ही पहले-पहल मनुष्य के चित्त को ससार के प्रपच, नित्य के क्लेश तथा दु ख से दूर हटाकर उसे विशुद्ध आनद की उपलब्धि की ओर अग्रसर किया है। सभ्य जातियो की तो बात ही न्यारी है, असभ्यता के पक मे धसकर जगली जीवन बितानेवाली भी जातिया कहानिया कहकर अपना तथा अपने कुटुबियो का मनोविनोद किया करती हैं। अत मानवो के चित्तविनोद का प्रारभिक साधन होने से कहानियो की शिक्षा किसी भी देश या युग मे कम नही है।

• • •

पाश्चात्य-साहित्य मे कथा को विशेष गौरव दिया जाने लगा है और उससे प्रभावित होकर पूर्वी साहित्य मे भी इसकी महत्ता स्वीकृत होने लगी है—यह कथन आजकल के लिए सच्चा कहा जा सकता है। परतु हमे यह न भूलना चाहिए कि कथा-साहित्य का उदय इसी भारतवर्ष मे हुआ और इसने ही ससार के सामने इस साहित्यिक साधन की उपयोगिता सर्वप्रथम प्रदर्शित की। भारतीय साहित्य की विश्व-साहित्य के लिए जो-जो देन हैं, उनमे इस साहित्यिक 'कथा' की देन विशेष महत्व रखती है। पाश्चात्य जगत् के प्राचीन कथासाहित्य से परिचित विद्वानो को इसे बताने की आवश्यकता नही कि यह भारतवर्ष ही कथा की उद्गम भूमि है। यहीसे इसने भ्रमण करना आरभ किया और वह समस्त सभ्य देशो के साहित्य मे व्याप्त हो गई। छठी शताब्दी मे हम भारत मे उन कथाओ की लोकप्रियता पाते हैं, जिनका सग्रह 'पचतत्र' मे हमे आज भी उपलब्ध हो रहा है। 'पचतत्र' का भी अपना विशिष्ट इतिहास है, जिसे जर्मन विद्वान् डाक्टर हर्टेल ने बडे परिश्रम से खोज निकाला है। पचतत्र की कहानिया बडी प्राचीन है। 'बृहत्कथा'

(दूसरी शताव्दी) तथा 'तन्त्राख्यायिका' के रूप मे उसका मौलिक रूप आज भी हमारे मनन के लिए विद्यमान है।

'पचतत्र' विश्व-साहित्य को भारतीय साहित्य की महती देन है। इन कहानियो के भ्रमण की कथा नितात रोचक तथा उपदेशप्रद है। उसका अनुशीलन हमे बताता है कि करटक तथा दमनक ('सियार पाडे') की चतुरता भारत के तथा अरब के निवासियो को समभाव से आनदित करती रही है। राजा शिवि के आत्मत्याग की कथा राजा भोज के सभासदो को उसी प्रकार उपदेश देती थी, जिस प्रकार फारस के बादशाह खुसरो नौशेरवा के दरबारियो को। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि जब षष्ठशतक मे भारत का तथा फारस का घनिष्ठ सबध था तब इन रोचक तथा उपदेशप्रद कथाओ की ओर इस न्यायी बादशाह (५३१ ई० – ५७९ ई०) की दृष्टि आकृष्ट हुई। इनके दरबारियो मे सस्कृत के ज्ञाता एक हकीम थे। उनका नाम था बुरजोई। इन्ही हकीम-साहब ने पहले-पहल पचतत्र का प्रथम अनुवाद पहलवी (प्राचीन फारसी) भाषा मे ५३३ ई० मे किया। इस अनुवाद के पचास वर्ष के भीतर ही एक ईसाई पादरी ने पहलवी से सीरिअन भाषा मे ५७० ई० मे कलिलग और दमनग के नाम से अनुवाद किया। ईसाई साधु का नाम था वुद। सीरिअन से अनुवाद अरबी मे किया गया था। इस अनुवाद का नाम कलीलह और दमनह है, जो प्रथम तत्र के प्रधान पात्र 'करटक तथा दमनक' के नाम पर दिया गया है। यह हुई सातवी शताब्दी मे पश्चिमी जगत् मे भारतीय कहानियों के भ्रमण की बात। इस शताब्दी से पहले ही वे भारत से पूरब भी पहुच चुकी थी, क्योंकि चीनी भाषा के दो विश्वकोषो में (जिनमे प्राचीनतर ६६८ ई० मे रचित है) बहुत-सी भारतीय कहानियो का अनुवाद चीनी भाषा मे किया गया मिलता है। इसमे आश्चर्य नही, क्योकि इन विश्वकोषो ने अपने लिए २०२ बौद्ध ग्रथो को आधार बतलाया है। इस प्रकार दो शताब्दी के भीतर ही ये भारतीय कहानिया अरब से लेकर चीन तक फैल गई।

अरबी भाषा मध्ययुग की सभ्य भाषा थी। अरबी मे अनुवाद होते देर नही हुई कि ये कहानिया पश्चिमी जगत् के साहित्य मे प्रवेश कर गई और भिन्न-भिन्न देशो की भाषाओ मे इनके अनुवाद होने लगे। लैटिन, ग्रीक, जर्मन, फ्रेंच, स्पैनिश तथा अग्रेजी आदि भाषाओ मे इसके अनुवाद धीरे-धीरे मध्ययुग के १६वी शताब्दी तक होते रहे। ग्रीस के सुप्रसिद्ध कथासग्रह 'ईसाप की कहानिया' तथा अरब की मनोरजक कहानिया 'अरेवियन नाइट्स' की आधारभूत ये ही कहानिया हैं, इस तथ्य के अन्वेषक विद्वानो की यह मान्य सम्मति है। मध्ययुग मे ये भारतीय कहानिया 'विदापइ की कहानिया—Stories of Bidapai (विद्यापति की कथाए) के नाम से पश्चिमी जगत् मे विख्यात थी। ये कहानिया वहा के लोगो मे इतनी प्रसिद्ध हुई कि उन्हे इनके भारतीय होने का तनिक खयाल भी न हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि भगवान् बुद्ध ईसाई सतो के बीच मे विराजने लगे। मध्ययुग की एक सुविख्यात कहानी थी—Story of Barlaam and Joseph (बरलाम और जोजफ की कहानी)। वह इतनी शिक्षाप्रद हुई कि कथा के पात्र ईसाई सतो मे गिने जाने लगे। इनमे जोजफ स्वय बुद्ध हैं। जोजफ बुदसफ के रूप मे 'बोधिसत्व' का अपभ्र श है। 'बोधिसत्व' बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए क्रियाशील व्यक्ति का ही द्योतक है। क्या यह कम आश्चर्य का विषय है कि बुद्ध ने ईसाई मत मे इन्ही कहानियो की कृपा से सतो की माननीय पक्ति मे स्थान पा लिया! बेचारे ईसाइयो को इसका बिलकुल ध्यान न था कि जिसकी वे अपने सतो मे गणना कर रहे थे वे उनके विरुद्ध धर्म के सस्थापक थे।

मध्ययुग की बात जाने दीजिये। उससे भी प्राचीन काल मे भारतीय कहानियो का परिचय पश्चिमी जगत् को मिल गया था। 'सालोमन के न्याय' (सालोमन्स जजमेण्ट) के नाम से प्रसिद्ध कहानी का मूल भारतीय ही है। सिकन्दर की जितनी कहानिया ग्रीक, अरबी, हिब्रू तथा फारसी भाषाओ मे मिलती हैं, उनमे सर्वत्र उनकी माता के विषय

मे एक ही कहानी दी गई है। उसका पुत्रशोक इतना अधिक था कि वह किसी प्रकार कम ही न हो रहा था। तव किसी विद्वान् ने उससे कहा कि यदि तुम हमारे लिए ऐसे घर से सरसो ला दोगी जहा किसी की कभी मृत्यु न हुई हो, तो मैं तुम्हारे पुत्र को जिला दूगा। वेचारी घर-घर सरसो की तालाश मे घूमती रही। अतत देहधारियो के लिए मृत्यु आवश्यक अवसान है, इस तथ्य का पता उसे स्वय लग गया। यह कहानी भी भारतीय है। बुद्ध के द्वारा 'कृशा गौतमी' का उपदेश ही इस कहानी का आधार है। इस प्रकार पचतत्र की कहानिया केवल भारत-वासियो को ही आनदित नही करती, प्रत्युत सभ्य ससार के अनेक देशो के निवासी उनसे आनद उठाते हैं तथा अपने जीवन को सुखमय वनाते हैं।

• • •

पचतत्र जिन कथाओ का सग्रह है वे भारत मे नितात प्राचीन हैं। पचतत्र के भिन्न-भिन्न शताव्दियो मे तथा भिन्न-भिन्न प्रातो मे अनेक सस्करण हुए। कुछ तो आज भी उपलव्ध हैं। इनमे सवसे प्राचीन सस्करण 'तत्राख्यायिका' के नाम से विख्यात है,जिसका मूल स्थान कश्मीर है। पचतत्र के भिन्न-भिन्न चार सस्करण उपलव्ध हैं—(१) पचतत्र का पहलवी अनुवाद, जो उपलव्ध तो नहीं है, परतु जिसकी कथाओ का परि-चय सीरिअन तथा अरवी अनुवादो की सहायता से प्राप्य है, (२) दूसरा सस्करण गुणाढ्य की वृहत्कथा मे अतर्निविष्ट है। यह वृहत्कथा पैशाची भाषा मे थी, मूल इसका नष्ट हो गया है परतु ११ वी शताव्दी के क्षेमेन्द्ररचित वृहत्कथामजरी तथा सोमदेव का कथासरित्सागर इसी ग्रथ के अनुवाद है। (३) तृतीय सस्करण 'तत्राख्यायिका' तथा उसीमे सवद्ध जैन कथा-सग्रह है। आजकल का प्रचलित पचतत्र इसीका आधुनिक प्रतिनिधि है। (४) चौथा सस्करण दक्षिणी पचतंत्र का मूलरूप है। नैपाली पचतत्र तथा हितोपदेश इस सस्करण के प्रतिनिधि है। इस प्रकार पच-तत्र एक सामान्य ग्रंथ न होकर एक विपुल साहित्य का प्रतिनिधि है।

पचतत्र से प्राचीनतर कथासग्रह बौद्ध जातको मे उपलब्ध है। ये जातक भगवान् बुद्ध के प्राचीन जन्म की मनोरजक कहानिया हैं। इनका उद्देश्य यह दिखलाना है कि अनेक जन्म मे पारमिताओ के अभ्यास करने से बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। जातक-कथाओ की सख्या ५५० है। इनके भीतर विपुल ज्ञातव्य ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक सामग्री मिलती है, जिसके अनुशीलन से बुद्ध के समय के अथवा उससे भी प्राचीन काल के भारतीय इतिहास का रमणीय चित्र उपलब्ध होता है। इन जातको मे अत्यत प्राचीन काल से दतकथा या लोककथा के रूप मे जो कहानिया चली आती थी उनका विशाल समुच्चय है।

जातको से भी प्राचीन सामग्री वैदिक साहित्य मे स्वय उपलब्ध होती है। ब्राह्मण और उपनिषदो मे जो कहानिया विस्तार के साथ मिलती हैं उन कहानियो का सकेत ऋग्वेद की सहिता मे स्वय प्राप्त होता है। ऋग्वेद मे बहुत-से सूक्त ऐसे उपलब्ध होते हैं, जिनमे दो या तीन पात्रो मे परस्पर कथनोपकथन विद्यमान हैं। इन सूक्तो को 'सवाद-सूक्त' कहते है। भारतीय साहित्य के अनेक अगो का उद्गम इन्ही सवाद-सूक्तो से होता है। इनके अतिरिक्त सामान्य स्तुतिपरक सूक्तो मे भी भिन्न-भिन्न देवताओ के विषय मे अनेक मनोरजक तथा शिक्षाप्रद आख्यानो की उपलब्धि होती है। सहिता मे जिन कथाओ की केवल सूचनामात्र है उनका विस्तृत वर्णन बृहद्देवता मे तथा षड्गुरुशिष्य की 'कात्यायन सर्वानुक्रमणी' की वेदार्थदीपिका टीका मे किया गया है। निरुक्त मे यास्क ने तथा सायण ने अपने भाष्य मे इन कथाओ के रूप तथा प्राचीन आधार को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। द्या द्विवेद का उद्योग इस विषय मे अत्यत श्लाघनीय है। ये गुजरात के रहने-वाले थे तथा १५ वी शताब्दी मे उत्पन्न हुए थे। इन्होने समस्त वैदिक कहानियो का अध्ययन कर उनसे प्राप्य शिक्षाओ को प्रदर्शित करते हुए एक बहुत ही उपयोगी पुस्तक लिखी है। इस ग्रथ का नाम नीतिमजरी है। इसमें इन्होने षड्गुरु शिष्य की वेदार्थदीपिका (११८४ ई०) से

तथा सायरण के वेदभाष्य (१४ शताब्दी) से अनेक उद्धरण अपने ग्रथ में दिये हैं। नीतिमजरी की एक हस्तलिखित प्रति से पता चलता है कि इसकी रचना १५५० वि० स० (१४९४ ई०) मे की गई थी। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर वेद को कहानियो का मूल स्रोत मानना उचित प्रतीत होता है। वेद मे आई हुई कहानिया पुराणो मे आकर कुछ रूपातरित हो गई हैं। रामायण तथा महाभारत मे इनके कई अशो में परिवर्तन दीख पडता है, परतु कथानक का मूल एक ही है। बौद्ध साहित्य तथा जैन-साहित्य मे भी इन कहानियो के प्रतिनिधि विद्यमान हैं। कहानियो का रूपातर कहा, कब और किन कारणो से सम्पन्न हुआ, यह कथा-साहित्य के विद्यार्थियो के लिए गवेषणा का विषय है।

... .

इस ग्र थ की सगृहीत कहानिया सहिता, ब्राह्मणो तथा उपनिषदो से ली गई हैं। घटनाक्रम सब वेद का ही है। उसे आधुनिक रूप मे सजाने तथा परिष्कृत करने का काम लेखक ने किया है। कहानियो की आत्मा वैदिक है, लेखक ने केवल इन्हे शरीर प्रदान किया है। कहानियो का वातावरण वैदिक है। इनकी सजावट के समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि वेद से विरोधी विचार तथा भाव को स्थान न दिया जाय। लेखक इस विषय मे कितना सफल हुआ है, यह बतलाना विद्वान् आलोचको का ही काम है। इन कहानियो के लिखने मे उसका प्रधान आशय यह है कि वैदिक सभ्यता तथा सस्कृति की एक झलक सर्व-साधारण लोगो को भी विशुद्ध रूप मे मिले। आधुनिक काल मे हम अपने वैदिक आदर्शों को भूलते चले जाते हैं। इन आदर्शों का परिचय साधारण जनता को भी प्राप्त हो, यही लेखक के इस साहित्यिक प्रयास का लक्ष्य है।

जो कहानिया इस पुस्तक मे लिखी गई हैं वे वैदिक साहित्य मे अत्यत प्रसिद्ध हैं। इन कहानियो का अलग इतिहास है। ये कहानिया वैदिक सहिता से आरभ होकर उपनिषदो से होती हुई पुराणो मे आई

हैं। इस भ्रमणकाल से उनमे परिस्थिति के कारण कुछ परिवर्तन भी हुआ है। उदाहरण के लिए दध्यङ् आथर्वण (दधीच) की कहानी को लीजिये। इसके वैदिक तथा पौराणिक स्वरूप के तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले के लिए दोनो स्वरूपो का पार्थक्य स्पष्ट हो जायगा। इन कहानियो के आधार तथा महत्व का सक्षिप्त परिचय यहा दिया जाता है—

१ नारी का तेज—इस कहानी के आधार है—ऋग्वेद ८।९१, बृहद्देवता ६।९९-१०६, सर्वानुक्रमणी ८।९१, सायणभाष्य ८।९१, नीति-मजरी पृ० २७८-८१। अपाला आत्रेयी के आदर्श नारी-चरित्र का प्रदर्शन इसमे किया गया है। अपाला का यह चरित्र वैदिक साहित्य मे खूब विख्यात है। वह बडी विदुषी थी तथा ऋग्वेद के ऊपर निर्दिष्ट सूक्त की ऋषि (द्रष्टा) थी।

२. गुणी का तिरस्कार—इसका आधार है—ऋग्वेद ५।२, शाट्यायन ब्राह्मण (सायण के भाष्य (५।२) मे उद्धृत), ताड्य ब्राह्मण १३।३।१२, बृहद्देवता ५।१४-२३ ऋग्विधान १२।५२, नीति-मजरी पृ० १७४-७८। वैदिककालीन पुरोहित के गौरव का प्रदर्शन इस कहानी मे अच्छी तरह से किया गया है।

३ सगति का फल—इसका आधार है—ऋग्वेद ८।१९,८।८१, निरुक्त ४।१५, बृहद्देवता ६।५१, कात्यायन सर्वानुक्रमणी ८।१९, नीतिमजरी पृ० २६०-६४, भागवत पुराण ९ स्कध, अध्याय ६।३८-५५। सोभरि काण्व की यह कहानी वेद तथा पुराण दोनो मे खूब प्रसिद्ध है। भागवत (१० स्कध १७ अध्याय) से स्पष्ट है कि सोभरि की तपस्या का स्थान यमुना का किनारा था। कालिय ह्लद मे गरुड के न आने का जो शाप दिया गया था वह इन्हीका था। सुवास्तु (आजकल सिंधु की सहायक नदी स्वात) के प्रदेश के नरेश त्रसदस्यु इनके समकालीन थे। यह बात वैदिक साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है।

४ सोने की प्यास—इसका आधार है—ऋग्वेद १।२४।३०, ऐतरेय

ब्राह्मण ७।३, नीति-मजरी पृ० २०-२५। वैदिक साहित्य मे नितात प्रसिद्ध यह आख्यान ऋषि शुन शेप के विषय मे है। ये ऋग्वेद के सात सूक्तो के ऋषि हैं। इस कथानक मे उल्लिखित इक्ष्वाकु नरेश राजा हरिश्चद्र वे ही हैं जिनके जीवन की अतिम झाकी विश्वनाथ की अमर-पुरी मे दिखलाई पडी थी। आज भी हरिश्चद्र घाट से टकराकर कलकल निनाद करनेवाली पुण्यसलिला भागीरथी उनकी सत्यवादिता की मनो-रम कहानी भावुक जनो के कानो में सुनाती हुई प्रवाहित होती है।

५. अन्न की महिमा—इस कहानी का आधार छादोग्य उपनिषद् (प्रथम प्रपाठक, खड १२-११) है। अन्न की महिमा दिखलाना तथा याग विधान से भूयसी विपत्ति के टल जाने का इसमे वर्णन पाया जाता है।

६. बालक का सत्याग्रह—इसका आधार है—कठोपनिषद्। इस कहानी के उदय तथा अभ्युदय की कथा बडी ही मनोरजक है। कठोप-निषद् के पहले तैत्तिरीय सहिता मे इसकी सूचना मिलती है। नाचिकेत पुराण मे यह कहानी परिवर्धित रूप मे मिलती है। परतु इसके कथानक मे कुछ अतर पाया जाता है। उपनिषद् की कहानी मे ब्रह्मज्ञान का उपदेश प्रधान लक्ष्य है परतु पुराण मे कर्म-सिद्धात का प्रतिपादन प्रधान ध्येय है। अपभ्र श-साहित्य मे भी यह कहानी उपलब्ध होती है। इतना ही नही, सदलमिश्र ने इसी कहानी को लेकर अपने 'नासिकेतो-पाख्यान' की रचना की है जो प्रारभिक खडी बोली-गद्य का नमूना माना जाता है।

७. प्रेम की साधना—इसका आधार है ऋ वे ५।६१ बृहद्देवता ५।५०-८१, सर्वानुक्रमणी ५।६१ तथा इसी मत्र पर सायण भाष्य, साख्या-यन श्रौतसूत्र १६।११।९, नीतिमजरी पृ० १८५-६८।

इस कहानी मे ऋषि का गौरव, प्रेम की महिमा, कवि की साधना—बडी ही सुदर रीति से अभिव्यक्ति की गई है। वैदिक साहित्य की यह अत्यत विख्यात प्रणय-कहानी है, जिसमें प्रेम की सिद्धि के लिए तपस्या

का अनुष्ठान कर श्यावाश्व आत्रेय मत्र-द्रष्टा ऋषि हो गये थे। श्यावाश्व के पिता अर्चनाना आत्रेय ऋग्वेद ५ वें मडल के ६३-६४ सूक्तो के ऋषि हैं।

८ **पतिव्रता का प्रभाव**—इसका आधार है—ऋ वे. १।११६, ११७, ११८; ऋ वे. १०।३९।४ ताड्य ब्राह्मण १४।६।११; निरुक्त ४।१९; शतपथ-ब्राह्मण काड ४, नीतिमंजरी पृ० ८१-८४, पुराण भागवत स्क० ९, अ० ३।

च्यवन भार्गव तथा सुकन्या मानवी की यह कहानी भारतीय नारी-चरित्र का एक नितात उज्ज्वल आदर्श उपस्थित करती है। च्यवन का वैदिक नाम च्यवान है। सुकन्या की वैदिक कहानी इसकी पौराणिक कहानी से कही अधिक उच्च तथा आदर्शमयी है। पुराण मे सुकन्या ने ऋषि की चमकती हुई आखो को छेदकर स्वय अपराध किया था, जिसके लिए उसे दड मिलना स्वाभाविक था। परतु वेद मे उसका आत्मत्याग बहुत ही उच्चकोटि का है। सैनिक बालको के द्वारा किये गए अपराध के निवारण के लिए सुकन्या वृद्ध ऋषि को आत्म-समर्पण करती है। वैदिक तथा पौराणिक दोनो कथानको के पार्थक्य पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

९ **प्रेम का पुरस्कार**—इसका आधार है—ऋ० वे० १०।९५, शतपथ ब्राह्मण (११।५।१) बृहद्देवता ७।१४७—१५३ वेदार्थदीपिका १०।९५, नीतिमजरी पृ० ३२५-३२९, विष्णु पुराण ४।६, मत्स्यपुराण अ० २४, भागवत ९।१४, कालिदास—विक्रमोर्वशी।

पुरूरवा और उर्वशी की कहानी वेद तथा पुराणो मे खूब प्रसिद्ध है। कालिदास ने विक्रमोर्वशी मे इसी कथानक को नाटकीय रूप प्रदान किया है। इस कहानी के विकास का एक विशिष्ट इतिहास है। कालिदास ने मत्स्यपुराण का आधार लेकर इस कथानक को नितात प्रेममय बना दिया है। परतु वैदिक काल मे इसका कुछ दूसरा ही रूप था। पुरूरवा पहला व्यक्ति था, जिसने त्रेधा अग्नि (आहवनीय, गार्हपत्य

और दक्षिणाग्नि) की स्थापना की। यज्ञ-सस्था का आरभ कर वह मानवों का महान् उपकारी बन गया। पुरूरवा का यह परोपकारी रूप वैदिक कहानी की विशेषता है। इस आख्यान के भीतर एक रहस्य है। पुरूरवा सूर्य है और उर्वशी उषा है। सूर्य और उषा का परस्पर सयोग बहुत ही क्षणिक काल के लिए होता है। वियुक्त उषा की खोज मे सूर्य दिनभर उसके पीछे घूमा करता है। इस रहस्यमय आख्यान को कालिदास ने प्रणय का रूप प्रदान किया है।

१०. अधिकार का रहस्य—इस कहानी का आधार ऋ० वे० १।११६।१२, १।११७।२२; १०।४८।२; शतपथ ब्राह्मण १४।४।५।१३; बृहराण्यक उपनिषद् २ अध्याय, ५ ब्राह्मण, बृहद्देवता ३।१८-१४, नीतिमजरी पृ० ८६-९०, भागवत पुराण ६।१०।

इस कहानी के नायक दध्यङ् आथर्वण हैं, जिनका पौराणिक लोकप्रिय नाम ऋषि दधीच है। इन्हीकी हड्डी से वज्र बना, जिससे इद्र ने वृत्र को मारकर आर्य-सभ्यता की रक्षा की। वैदिक तथा पौराणिक कहानी के कई अशो मे अंतर है। वैदिक कहानी मे अश्व के सिर से ही वज्र के निर्माण की बात लिखी है, परतु पुराण मे अपनी हड्डी देने के लिए ऋषि के देहत्याग की कथा है। अनधिकारी को रहस्य की शिक्षा देने के कुपरिणाम का वर्णन स्पष्ट है।

११ ब्रह्मज्ञानी का रूप—इसका आधार छदोग्य उपनिषद् (अ० ४।यु ३) है।

१२ ज्ञान की गरिमा—इसका आधार केनोपनिषद् है। ब्रह्म समीप मे है तथा दूर भी है। जो अहकारी हैं उनसे वह दूर है और जो विनयी हैं उनके पास हैं। इस तथ्य का प्रतिपादन ही इस कहानी का लक्ष्य है।

•

वैदिक कहानियो की यह रचना हिन्दी-साहित्य मे ही नही प्रत्युत अन्य भारतीय भाषाओ के साहित्य मे भी अद्वितीय है। जहातक मुझे मालूम है, यह पहला अवसर है जबकि वेद की कहानिया ठीक उसी

विशुद्ध रूप मे हिन्दी-पाठको के सामने प्रस्तुत की जा रही हैं।

मेरी कामना है कि यह पुस्तक अधिक-से-अधिक लोगो के हाथो में पहुचे, जिससे वे इसे पढकर अपने जीवन के स्तर को ऊचा उठाने का पूर्ण उद्योग करें और आज के अशात वातावरण में भी वे अपने चित्त मे शाति बनाये रखें। ये समस्त कहानिया भारतीय सस्कृति के अत्यंत प्राचीन युग से सम्बद्ध हैं। वेद जिस प्रकार हमारे आचार-विचार का, धर्म-दर्शन का मूल प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार वह अनेक सुन्दर उपादेय आख्यानो का और कथानको का भी भडार है। इन कथानकों मे वैदिक युग की विचारधारा अपने विशुद्ध रूप मे हमारे सामने आती है। वैदिक युग के धर्म का, समाज का, आध्यात्मिक चितन का, तथा रहन-सहन का सक्षिप्त, परतु प्रामाणिक विवरण यहा पृष्ठभूमि के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। कहानियो का वातावरण यज्ञधूम के समान सुगधित है तथा पृष्ठभूमि आध्यात्मिक चितनो से सुस्निग्ध तथा पेशल है। कहानियो मे साहित्यिक सौंदर्य के साथ-ही-साथ दार्शनिक विचारो का कमनीयरूप अपनी भव्यता के साथ प्रस्तुत हो रहा है। मेरा दृढ निश्चय है कि इन कहानियो के पढने से पाठको का केवल मनोरजन ही नही होगा, प्रत्युत उन्हे औदार्य, सत्याग्रह, कर्तव्यनिष्ठा, उत्साह, आत्मसमर्पण आदि सद्गुणो की भी सुन्दर शिक्षा मिलेगी, जिनको व्यवहार में लाकर वे अपने जीवनस्तर को ऊचा उठाने मे सर्वथा कृतकार्य हो सकेंगे।

मुझे प्रसन्नता है कि 'सस्ता-साहित्य-मडल' ने इस ग्रथ को प्रकाशित कर सत्साहित्य के प्रचार मे एक नई शृखला जोड दी है। शोभन-साहित्य को भारतीय जनता के हृदय तक पहुचाने का उसका कार्य सब प्रकार से श्लाघनीय और अभिनदनीय है।

—बलदेव उपाध्याय

विषय-सूची

ज्ञान की गरिमा

: १ :

नारी का तेज

१

मेरा नाम अपाला है। मैं महर्षि अत्रि की पुत्री हू। मेरे माता-पिता की बडी अभिलाषा थी कि उनके सूने घर को सतान का जन्म सनाथ करे। घर भर मे विषाद की एक गहरी रेखा छायी रहती थी। मेरा जन्म होते ही उस आश्रम मे प्रसन्नता की सरिता बहने लगी, हर्ष का दीपक जल उठा, जिससे कोना-कोना प्रकाश से उद्भासित हो गया। मेरा शैशव ऋषि-बालको के सग मे बीता। मेरे बाल्यावस्था मे प्रवेश करते ही पितृदेव के चित्त मे चिन्ता ने घर किया जब उन्होने मेरे सुन्दर शरीर पर श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) के छोटे-छोटे छीटे देखे। हाय! रमणीय रूप को इन श्वित्र के उजले चिह्नो ने सदा के लिए कलकित कर डाला। पिताजी ने अपनी शक्ति भर इन्हे दूर करने का अश्रात परिश्रम किया तथा निपुण वैद्यो के अचूक अनुलेपनो का लेप लगाया परतु फल एकदम उलटा हुआ। औषध के प्रयोगो के साथ-साथ विपरीत अनुपात से मेरी व्याधि बढने लगी, छोटे-छोटे छीटे बडे धब्बो के समान दीख पडने लगे। अततोगत्वा मेरे पिता ने औषध का प्रयोग बिल्कुल छोड दिया।

मेरे वाह्य शरीर को निर्दोष बनाने मे असमर्थ होने पर पितृदेव ने मेरी शिक्षा-दीक्षा की ओर दृष्टि फेरी। लगे वे प्रेम से पढाने। आश्रम का पवित्र वायुमडल, ऋपि-वालको का निश्छल सहवास, पिता की अलौकिक अध्यापन-निपुणता—सवने मिलकर मेरे अध्ययन मे पर्याप्त सहायता दी। विद्या-ग्रहण मेरे जीवन का एकमात्र व्रत वन गया। धीरे-धीरे मैंने समग्र वेद-वेदागो का प्रगाढ अध्ययन किया। मेरे मुख से देववाणी की धारा उसी प्रकार विशुद्ध रूप से निकलती जिस प्रकार सप्त-सिधु-मडल की पवित्रतम नदी सरस्वती का विमल प्रवाह। सुकुमारी वालिका के कोकिल-विनिंदित कठ से जब वैदिक मत्रो की ध्वनि निकलती तब उस रम्य तपोवन मे कोकिल की कूक कर्कश लगती, मयूरी की ललित केका भेकी के स्वरूप के समान वैमनस्य उत्पन्न करती। मेरी शास्त्रचिंता को सुनकर मुनिजन मेरी गाढ वैदुपी का परिचय पाकर आश्चर्य से विस्मित हो उठते।

धीरे-धीरे उस आश्रम मे वसत के मगलमय प्रभात का उदय हुआ। हरी-भरी लतिकाए पुष्पभार से लदी आनद मे झूमने लगी और सहकार का आश्रय लेकर अपनेको सनाथ तथा अपने जीवन को कृतकृत्य वनाने लगी। ठीक उसी समय मेरे जीवन मे भी यौवन का उदय हुआ। वाल्यकाल की चपलता मिट चली और उसके स्थान पर गम्भीरता ने अपना आसन जमाया। पिता ने मेरे इस शारीरिक परिवर्तन को देखा और वे मेरे लिए एक उपयुक्त गुणी पात्र की खोज मे लग गये। अनुरूप वर के मिलने मे देर न लगी। उचित अवसर पर मेरे विवाह की तैयारिया होने लगी।

आश्रम का एक सहकार-कुज (आम का कुज) वैवाहिक विधि के अनुष्ठान के लिए चुन लिया गया। वेदी बनाई गई। ऋत्विजो ने विधिवत् जव-तिल का हवन किया। हविर्गन्ध से आश्रम का वायुमडल एक विचित्र पवित्रता का अनुभव करने लगा। उसी कुज मे मैने पहले-पहल अपने पतिदेव को देखा—गठीला वदन, उन्नत ललाट, माथे पर त्रिपुड की भव्य रेखाए, विनय की साक्षात् मूर्ति, विद्या के अभिराम आगार। मेरी तथा उनकी आखे चार होते ही मैंने लज्जामिश्रित आदर का अनुभव किया। लज्जा के मारे मेरी आखे आप-से-आप नीचे हो गई, परन्तु स्त्रीत्व की मर्यादा वनाये रखने के लिए मेरा ललाट अव भी ऊचा वना रहा। उनकी लजीली आखो मे थी यौवन-सुलभ कौतुक-भाव से मिश्रित गाम्भीर्य-मुद्रा। उपस्थित ऋषि-मडली के सामने पूज्यपाद पितृदेव ने अग्नि को साक्षी देकर मेरा तथा उनका पाणिग्रहण करा दिया। मुझे विल्कुल याद है कि अग्नि की प्रदक्षिणा करते समय उतावली के कारण उनका उत्तरीय वस्त्र थोडा-सा नीचे खिसक गया था तथा मेरे 'ओपश' (केशपाश) मे गुथी हुई जुही की माला शिथिल-वधन होकर धरातल-शायिनी हुई थी।

२

मेरे लिए पतिगृह मे भी किसी प्रकार का नियन्त्रण न था। पितृगृह के समान मुझे यहा भी स्वातन्त्र्य की शान्ति विराजती मिली। वृद्ध सास तथा ससुर की सेवा मे मेरे जीवन की धारा कृतार्थता के किनारे का आश्रय लेकर चारु रूप से वहने लगी। परन्तु गुलाव के फूल मे काटो के समान इस सुखद स्वच्छन्द जीवन के भीतर एक वस्तु मेरे हृदय मे कसकने लगी। वह थी

मेरे शरीर पर श्वित्र के छीटो की ज्वलत सत्ता ! प्रिय कृशाश्व मुझे नितात कोमल भाव से प्रेम करते थे, परतु धीरे-धीरे इन श्वित्र के सफेद चिह्नो ने उनके हृदय मे मेरे प्रति काला धब्बा पैदा करने का काम किया। अब वे नितात उदासीनता की मूर्ति बने वैराग्य मे मग्न दीख पडते। आश्रम की सजीवता नष्ट हो चली, निर्जीवता का काला परदा सर्वत्र पडा रहता, बाहर आश्रम के वृक्षो पर और भीतर कृशाश्व के हृदय पर। मैंने बहुत दिनो तक इस उपेक्षा भाव को विष की घूट की भाति पी लिया, परतु सहनशीलता की भी एक सीमा होती है। जब यह तिरस्कार उस सूक्ष्म रेखा को पार कर गया, जो मित्रता तथा उदासीनता के भावो को अलग किया करती है, तब मुझसे न रहा गया। मेरे भीतर जीवत स्त्रीत्व की मर्यादा इस व्यापार के कारण क्षुब्ध हो उठी। अपाला के अतस्तल मे छिपा भारतीय ललना का नारीत्व अपना गौरव तथा महत्व प्रकट करने के लिए पैर से कुचली गई फूत्कार करनेवाली नागिन के समान अपने दुर्धर्ष रूप को दिखलाने के लिए व्यग्र हो उठा। इस उग्र रूप को देख एक बार कृशाश्व त्रास से काप उठे।

. ...

"भगवन्, आपके इस उपेक्षाभाव (तिरस्कार) को कबतक मैं अपनी छाती पर ढोती फिरूंगी ?" मैंने एक दिन आवेश मे आकर पूछा।

"मेरा उपेक्षाभाव !" चौंककर कृशाश्व ने कहा।

"हां, प्रेम की मस्ती मे मैंने अभी तक इस गूढ उदासीनता के भाव को नही समझा था, प्रेम के नेत्रो ने सब वस्तुओ के ऊपर एक मोहक सरसता ही देखी थी, परतु शनै शनै स्नेह की

परिणति होने पर तथा बाह्य आडम्बर के स्वत न्यून होने पर मुझे आपके चरित्र मे उपेक्षा की काली रेखा दीख रही है। क्या इस परिवर्तन का रहस्य मेरे त्वग्दोष मे अतर्हित है ?" मैंने पूछा।

स्वीकृति की सूचना देते हुए कृशाश्व ने दु खभरे शब्दो मे कहना आरभ किया, "मेरे अतस्तल मे प्रेम तथा वासना का घोर द्वद्व छिडा हुआ है। प्रेम कहता है कि अपने जीवन को प्रेमवेदी पर समर्पण करनेवाली ब्रह्मवादिनी अपाला दिव्य नारी है, परतु रूप की वासना कहती है कि त्वग्दोष से इसका शरीर इतना लाछित हो गया है कि नेत्रो मे रूप से वैराग्य उत्पन्न करने का यह प्रधान साधन बन गया है। उसमे न तो है रूप की माधुरी, न लावण्य की चकाचौंध। दूसरा शरीर है कुरूपता का महान् आगार, सौंदर्य का विराट् विभ्राट्। अबतक मैं वासना की बात अनसुनी कर प्रेम के कथन को सुनता आया था, परतु इस द्वद्वयुद्ध से मेरा हृदय इतना विदीर्ण हो रहा है कि झीने कपडे से ढके हुए घाव के समान इस कुरूपता को मैं अधिक देर तक छिपा नही सकता।"

कृशाश्व के इन अन्यायपूर्ण वचनो को सुनकर मेरे हृदय मे आग-सी लग गई। शरविद्ध दुर्दान्त सिहनी के गर्जन के सामन मेरे मुख से क्रुद्ध शब्दो का कर्कश प्रवाह आप-से-आप प्रवाहित लगा

"पुरुप के हाथो स्त्री-जाति की इतनी भर्त्सना ! प्रेम की वेदी पर अपना सर्वस्व अर्पण करनेवाली नारी की इतनी धर्षणा ! कामना से कलुपित पुरुप द्वारा इस प्रकार नारी के हृदय-कुसुम का कुचला जाना ! अन्याय, घोर अन्याय ! हे भगवन्, स्त्री

जाति के भावप्रवण, सात्त्विक भाव से वासित, विमल हृदय को पुरुप-जाति कब समझेगी ? कब आदर करना सीखेगी ? नारी-जीवन है स्वार्थ-त्याग की पराकाष्ठा का उज्ज्वल उदाहरण ! स्त्री का हृदय है कोमल करुणा तथा विशुद्ध मैत्री की पारमिता का भव्य भाडार ! चिता तथा विपाद की, दु ख तथा अवहेलना की विपुल राशि को अपनी छाती पर ढोती हुई स्त्री-जाति अपने क्षुद्र स्वार्थ की सिद्धि के लिए कभी अग्रसर नही होती । परतु पुरुषो की करतूत किन शब्दो मे कही जाय ? वे रूप के लोभी, बाह्य आडम्बर के प्रेमी, क्षणभगुर चकाचौंध के अभिलाषी बनकर स्त्री के कोमल हृदय को ठुकरा देते है। आत्मश्लाघा मै नही करती, परतु वेद-वेदागो का मैंने गाढा अध्ययन किया है, गुरु-कृपा से सरस काव्य की माधुरी चखने का मुझे अवसर मिला। अपाला जैसा उन्नत मस्तिष्क तथा सरस हृदय का मणि-काचन योग नितान्त विरल है। परतु भाग्य का उपहास ! केवल एक गुण के न रहने से मेरी ऐसी दुर्दशा हो रही है । चन्द्रमा की विपुल गुणावली के बीच कलक की कालिमा डूब जाती है, परतु अपाला की विशाल गुणराशि के बीच श्वित्र के सफेद धब्बे भी नही डूब पाते ।" इतना कहते-कहते मेरे क्रोधरक्त नेत्रो से लाल चिनगारिया निकलने लगी ।

प्रतारित नारी के ये क्षोभभरे शब्द सुनकर कृशाश्व एक बार ही स्तब्ध हो उठे । अपने मूक सकेतो से ही उन्होने अपने हृदय के अस्वीकार को प्रकट किया । मै विचलित हो उठी । मैंने इस आश्रम का परित्याग कर दिया । अपने पिता के तपोवन मे आने के अतिरिक्त मेरे पास कोई दूसरा उपाय न रहा । सबल पुरुप के सामने अबला ने अपनी पराजय स्वीकार की ।

३

अत्रि के आश्रम मे आज प्रभात का समय सुहावना नही प्रतीत होता। उषा प्राची-क्षितिज पर आई, उसने प्रतारित रमणी के क्रोधभरे नेत्रो की आभा के समान अपने रश्मिजाल को सर्वत्र बिखेर दिया, परतु फिर भी आश्रम की मलिनता दूर न हुई। मुझ परित्यक्ता को देखकर मेरे माता-पिता के विषाद-भरे हृदय की सहानुभूति से आश्रम के सजीव तथा निर्जीव सब पदार्थो मे एक विचित्र उदासी छायी हुई थी। भगवान् सविता की किरणे झाकने लगी। परतु मानसिक आलस्य के साथ-साथ शारीरिक अलसता तनिक भी दूर न हुई।

मेरा अजीब हाल था। मुझमे न तो विषाद की छाया थी और न आलस्य की रेखा। पैर-तले रौंदी गई सापिनी जिस प्रकार अपनी फणा दिखलाती है, ठीक उसी प्रकार इस परित्याग के क्षोभ से मैं नारी के सच्चे रूप को दिखलाने मे तुल गई। त्वग्दोष के निवारण के लिए भौतिक उपायो को अकिंचित्कर जानकर मैंने आध्यात्मिक उपायो की उपयोगिता की जाच करने का निश्चय किया।

शारीरिक तथा मानसिक दुर्बलताओ के दूर करने का, कलुषित प्रवृत्तियो के जला डालने का, सबसे प्रबल साधन है तपस्या। तपस्या की आग मे कितने ही क्षुद्र मानव-भाव क्षणभर मे जल-भुनकर राख बन जाते हैं। तपाये गए काचन की भाति तपस्या की अनल मे तप्त मानव-हृदय खरा निकलता है, द्विगुणित चमक से चमक उठता है। मैंने भी इस उपाय का आश्रय लिया। वृत्रहता मघवा की उपासना मे मैंने अपना समय बिताना आरभ किया। प्रात काल होते ही मैं समिधा से

दहकते अग्निकुड मे होम करती और अनन्तर इन्द्र की पूजा तथा जप मे सलग्न हो जाती। कुशासन पर आसन जमायी हुई मेरी अभ्यर्थना उषा की सुनहली किरणें करती। प्रभात का मन्द समीर मेरे शरीर मे नवीन उत्साह, नई शक्ति का सचार करता। मध्याह्न का प्रचड उष्णाशु मेरे पचाग्निसाधन मे पचम अग्नि का काम करता। सध्या की लालिमा मेरे ललाट के उन्नत फलक पर लावण्य के साथ ललित केलियो का विस्तार करती। रजनी के अधकार की कालिमा मुझे चिरकाल तक कालिमा के तरगित समुद्र मे डुबाये रखती। अतत प्राची के ललाट पर तिलक के समान विद्योतमान सुधाकर की किरणें मेरे शरीर पर अमृतसिचन का काम करती। दिन के बाद राते बीतती और रातो के बाद दिन निकल जाते। देखते-देखते अनेक वर्ष आये और चले गये। परतु अभी तक भगवान् वज्र-पाणि के साक्षात्कार की अभिलाषा मेरे हृदय से नही गई।

मैं जानती थी कि इद्र की प्रसन्नता का सबसे बडा साधन है सोमरस का दान। गोदुग्ध से मिश्रित सोमरस के चषको के पीने से इद्र के मन मे जितना प्रमोद का सचार होता है उतना किसी वस्तु से नही। आशुगामी अश्वो तथा वेग से बहने-वाले वातो के समान सोम के घूट इद्र के हृदय को ऊपर उछाल देते हैं। सोमपान की मस्ती मे वज्रपाणि प्रबलतम दानवो का सहार कर अपने भक्तो का कल्याण साधन करते हैं। परतु सोम कहा मिले? वह तो मूजवान् पर्वत पर उगनेवाली ओषधि इधर दुष्प्राप्य-सी है। विचार आया देखू, शायद दैवानुग्रह से कही इधर ही प्राप्त हो जाय। सध्या के समय मैंने अपनी कलशी उठाई और जल भरने के लिए सरोवर को प्रस्थान

किया। जल भरकर ज्योही मैं लौटी मेरी दृष्टि रास्ते मे उगी लता-विशेष पर पडी। ऊपर गगन-मडल मे भगवान् सोम अपनी सोलहो कलाओ से चमक रहे थे। सोम (चद्र) के प्रकाश मे मुझे सोम (लता) को पहचानते विलम्ब न लगा। झट मैंने उस लता को तोड लिया और उसके स्वाद की माधुरी चखने के लिए उसे अपने दातो से चर्वण करना शुरू किया। दतघर्षण का घोष सुनकर इद्र स्वय उपस्थित हो गये। उन्होने समझा कि अभिषव-कार्य (चुवाने) मे लगनेवाले शिलाखडो का यह शब्द है। मैंने देखते ही अपने उपास्य देव को पहचान लिया।

इद्र ने मुझसे पूछा, "तुमने तो सोमरस देने की प्रतिज्ञा की थी?"

"हा, परतु मिठास विना जाने मैं सोम का पान कैसे कराती? इसलिए मैं स्वय उसका स्वाद ले रही हू।"

"तथास्तु"—इन्द्र जाने लगे।

"भगवन्, आप भक्तो के घर आवाहन किये जाने पर स्वय पहुच जाते है। आइये, मैं आपका स्वागत यही करू।" अपने दातो से घर्षित सोम की बूदो को लक्ष्य कर मैंने उनसे कहा, "आप धीरे-धीरे प्रवाहित होइये जिससे भगवान् इद्र के पीने मे किसी प्रकार का क्लेश न हो।"

मघवा ने सोमरस का पान किया। भगवान् ने प्रसाद ग्रहण किया। भक्त की कामना-वल्ली लहलहा उठी।

"वर मागो"—इद्र की प्रसन्नता वैखरी के रूप मे प्रकट हुई।

"भगवन्, मेरे वृद्ध पिता के खल्वाट शिर पर वाल उग जाय।"

"तथास्तु। दूसरा वर?"

"मेरे पिता के ऊसर खेत फल-सपन्न हो जाय।"

"एवमस्तु। तीसरा वर?"

"देवादिदेव, यदि आपका इतना प्रसाद है तो इस दासी अपाला का त्वग्दोष आमूल विनष्ट हो जाय।"

"बहुत ठीक। मेरी उपासिका का मनोरथ-तरु अवश्य पुष्पित तथा फलित होगा।" इतना कहकर इद्र ने मुझे अपने हाथो से पकड़ लिया और अपने रथ के छेद से तथा युग के छेद से तीन बार मेरे शरीर को खीचकर बाहर निकाला। मेरे पहले चाम से उत्पन्न हुए साही, दूसरे से गोह और तीसरे से गिरगिट। इस प्रकार मेरे शरीर के तीन आवरण छूटकर निकल गये। त्वग्दोष जडमूल से जाता रहा। इद्र की कृपा से मेरा शरीर सूर्य के समान चमकने लगा। मेरे ऊपर दृष्टि डालनेवाले व्यक्ति के नेत्रो मे चकाचौध छा गया। जो देखता आश्चर्य करता। सबला नारी के तपोबल को देखकर ससार अकस्मात् स्तब्ध हो गया।

४

आज मेरे नवीन जीवन का मगलमय प्रभात था। उषा की पीली किरणो ने आश्रम के प्रागण मे पीली चादर बिछा-कर मेरा स्वागत किया। मेरे प्रियतम कृशाश्व मेरी इस काचन-काया को देखकर कुछ हतप्रतिभ से हो उठे। उन्हे स्वप्न मे भी ध्यान न था कि मेरे शरीर मे इस प्रकार परिवर्तन होगा। नारी की शक्ति का अवलोकन कर उनका हृदय आनद से गद्गद हो उठा। मेरा आलिगन करते समय उनके नेत्रो से गोल-गोल आसुओ की बूदे मेरे कपोलो पर गिर पडी। उनके करुणापूर्ण कोमल हृदय को देखकर मैं चमत्कृत हो उठी और अपने नारी-जीवन को सफल मानकर मेरा शरीर हर्ष से रोमाचित हो गया।

: २ :

गुणी का तिरस्कार

१

प्रकृतिनटी ने पटपरिवर्तन किया। वर्षा के दुर्दिन के बाद शरद् का सुहावना समय आ पहुंचा। ससार की आखो को चकाचौंध करनेवाली बिजली का नील मेघो के झुड के बीच कौंधना कम हुआ। कानो को बहिरा बनानेवाले मेघगर्जन का कर्कश शब्द अब शान्त हो गया। सर्वत्र रमणीयता ने अपना साम्राज्य स्थापित किया। वर्षाकालीन नदियो ने भयकरता को छोडकर कोमलता का आश्रय लिया। जल निर्मल हो गया। नदियो तथा तालाबो मे विकसित कमल अपनी मस्ती मे झूमने लगे। मकरद के लोभी मधुकर परागपूरित पुण्डरीको के चारो ओर घूमने लगे और अपने मधुर गुजार के बहाने शरद् की गुणावली गाने लगे। आकाश मे मेघमडल के घने परदे को फाडकर दिनकर ने दर्शन दिया और अपनी चमकीली किरणो के द्वारा जगतीतल पर प्रभा को फैला दिया। शरद के उत्साह ने वर्षा की जडता को बलात् दूर भगा दिया। प्रकृति उत्साह से खिल उठी, प्राणियो का हृदय उत्साह से उछलने लगा। सर्वत्र एक विचित्र प्रकार की स्फूर्ति दिखलाई पडने लगी। इक्ष्वाकु नरेश राजा त्रैवृष्ण त्र्यरुण ने भी ऐसी सुहावनी ऋतु मे दिग्विजय करने का आरभ किया।

. .

राजा त्रैवृष्ण त्र्यरुण इक्ष्वाकुवश के एक महाप्रभावशाली

मानी महीपति हैं। विद्वत्ता तथा पराक्रम ने राजा का अपूर्व आधार पाकर अपना पुराना बैरभाव भुला दिया है। शस्त्र तथा शास्त्र दोनो विद्याओ मे उन्होने एक समान निपुणता प्राप्त की है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रो के द्रष्टा होने का गौरव जिस प्रकार उन्हे प्राप्त है उसी प्रकार अपनी शस्त्रचातुरी के कारण शत्रुओ को मार भगाने का भी श्रेय उन्हे मिला है। इनके राज्यकाल मे सर्वत्र सुख-शाति विराजती है। इनकी प्रजाओ मे निकृष्ट श्रेणी का भी प्राणी कभी बुरे मार्ग पर पैर रखने की बात नही सोचता। आश्रमो मे ऋषिजन अपनी साधना मे बिना किसी विघ्न के सलग्न है। आश्रम वेदाध्यायी वटुको के मन्त्रपाठ से गूज रहा है। प्रात काल होम-कुड मे जलनेवाले भगवान् अग्नि राजा तथा प्रजा के पापो का विध्वंस कर जगतीतल का मगल साधन करते हैं। ऋत्विज्जनो के कोमल कठो से निकले हुए साम-गायनो को सुनकर वृत्रहता इद्र प्रचुर वृष्टि से पृथ्वी को तृप्त करते है। जान पडता है कि मनुराज तथा देवराज दोनो प्राणियो के कल्याण साधन मे एक मन से जुटे हुए है। वर्षाकाल मे भगवान् इद्र ने अपने धनुष को जीवो के हित के लिए धारण किया था, वर्षा के समाप्त होते ही देवराज ने अपने धनुष की प्रत्यचा ढीली की, और इक्ष्वाकुराज ने अपने धनुष को वाणो से सुसज्जित किया और दिग्विजय करने का उचित अवसर जानकर नाना प्रकार की तैयारिया करन आरभ किया।

राजा त्रैवृष्ण के पुरोहित महर्षि वृश अपनी विद्या के लिए नितान्त प्रख्यात है। ये 'जन' नामक महर्षि के पुत्र हैं और इसी कारण 'वृश जान' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके मुखमडल से

देवताओं के नयन को भी चकित करनेवाली प्रभा फूट रही है जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनमे सौम्यभाव के साथ-साथ उग्र भाव का भी अभूतपूर्व मजुल सामजस्य है। ये सामगायन मे जितने कुशल हैं उतने ही आथर्वण मन्त्र-प्रयोगो मे चतुर है। निर्भीकता उनमे इतनी अधिक है कि राजा त्रैवृष्ण के लाख मना करने पर भी युद्ध-स्थल मे राजा का साथ देने से कभी पीछे नही हटते। वृद्ध होने पर भी उनका शरीर यौवन सुलभ स्फूर्ति का आगार है, अदम्य उत्साह का अद्भुत घर है, प्रखर पराक्रम का अपूर्व भाडार है। ऐसे कर्मठ पुरोहित को पाकर राजा त्र्यरुण अपनेको कृतकृत्य मानते है, क्योकि विशाल साम्राज्य के प्रजावर्गों का जितना कल्याण राजा का धनुष कर रहा है उससे कही अधिक कल्याण महर्षि वृश के आथर्वणमत्रो के द्वारा विहित प्रयोगो ने सिद्ध कर दिया है। प्रतापी पृथ्वीपाल तथा प्रभावशाली पुरोहित के परस्पर सहयोग से पृथ्वी समृद्ध-शालिनी बन गई है, प्रजाजन सुख की नीद सो रहे हैं, अत्या-चार देखने तक को नही रह गया है। सप्तसिंधव प्रदेश जो सिंधु, परुष्णी आदि सात नदियो से मडित है और जिसमे वैदिक आर्य निवास करते है भूतल का अभिराम स्वर्ग बन गया है।

"महर्षे, इस बार आप मेरा आग्रह टाल नही सकते, इसे तो आपको मानना ही पडेगा.", राजा त्रैवृष्ण ने बडी विनम्रता के साथ महर्षि वृश से कहा।

"लेकिन यह कौन-सा आग्रह है, जिसके ऊपर आपका इतना हठ दीख पडता है। जहातक मुझे स्मरण है मैं कभी अपने उदार यजमान की प्रार्थना को अस्वीकार करने का अपराधी नही हू।" वृश ने स्नेहसूचक शब्दो मे कहा।

"इस युद्धयात्रा के अवसर पर मेरे रथ का सारथि वनन हीवा। आपने अपनी अनुकपा से मुझे सदा कृतार्थ किया है रणक्षेत्र मे स्वय उपस्थित होकर आपने मेरी तथा इक्ष्वाकुओ की लड़ने की इच्छा को खूव वढाया है; आपकी प्रार्थनाओ ने भगवान् इद्र के मन को हमारी ओर आकृष्ट कर शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने मे पर्याप्त सहायता दी है। परतु इस बार आपको स्वय मेरे समर-लिप्सु अश्वो का सचालन करना पडेगा, मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरी रणयात्रा आपके सारथित्व मे सपन्न हो' राजा ने गद्गद् स्वर मे अपनी प्रार्थना ऋपि से कह सुनाई।

'तथास्तु", वृश ने आनन्दित होकर अपनी स्वीकृति दी और राजा की कर्तव्यपरायणता से मुग्ध होकर वह गम्भीर मुद्रा मे लगे कहने, "राजन्, तुमने पुरोहित का मूल्य खूव समझा है। पुरोहित राष्ट्र की प्रतिष्ठा है। वायु की सहायता से हीन अग्नि की भांति पुरोहित-रहित राजा का तेज कभी उद्दीप्त नही होता। पुरोहित पाच ज्वालाओ से सपन्न वैश्वानर अग्नि है। पुरोहित वह अग्नि है जिसके पाच विभिन्न अवयवो मे पाच ज्वालाओ का निवास रहता है। राजा का यह परम कर्तव्य है कि वह आचरणो से इन ज्वालाओ को शांत करने का सतत उद्योग किया करे। आगमन के शुभ अवसर पर राजा जिन स्वागत-वचनो का उच्चारण करता है उनसे पुरोहित की वाच्-स्थित ज्वाला की शाति होती है, पाद्य के लिए जल लाने से पादस्थित ज्वाला, शरीर को नाना वस्त्रो तथा अलकरणो से विभूपित करने से त्वड्निहित ज्वाला, नितात तर्पण करने से हृदयस्थित ज्वाला तथा गृह मे पूर्ण स्वातंत्र्य प्रदान करने से उपस्थस्थित ज्वाला शात की जाती है। इन अनुष्ठानो

के अभाव मे यह अग्नि राष्ट्र का विध्वस करके ही शात होगी। परतु स्वागत-समुदाचार से इसकी पर्याप्ति शाति का विधान किया जा सकता है। पुरोहित के 'राष्ट्र-गोप' कहलाने के तात्पर्य को तुमने अच्छी तरह समझा है। क्रुद्ध पुरोहित राजा को स्वर्ग से, क्षत्र से, बल से, राष्ट्र से तथा प्रजा से च्युत करा सकता है, परतु प्रसन्न होने पर वह राजा को इन वस्तुओ से सपन्न करा सकता है। राजा अपने सामर्थ्य से शत्रुओं के सामर्थ्य को दवा लेता है, बल से बल को प्राप्त करता है, राष्ट्र समृद्धिशाली बनता है तथा प्रजा एक मन होकर राजा के वश मे आ जाती है।"

क्षत्रेण क्षत्र जयति बलेन बलमश्नुते।
यस्यैव विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोप. पुरोहित ।
तस्मै विशः सजानते समुखा एकमनसः।
यस्यैव विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोप पुरोहितः ॥

(ऐत० ब्रा० ४० अ०)

राजा ने कहा, "महर्षे, साधारण जनता विपत्ति के समय मेरे धनुष पर विजय की आशा किये रहती है, परतु उसे पता ही क्या है कि हमारी समस्त आशाए आपकी उचित मत्रणाओ मे केंद्रीभूत रहती है। आपके इस प्रसाद को मैं अत्यन्त महत्व का मानता हू। आपका यह प्रसाद-कल्पतरु मेरी समग्र कामनाओ के फलने मे समर्थ होगा।"

पुरोहित ने सारथि बनने की स्वीकृति दी। यजमान के हृदय मे हर्ष का समुद्र उमड आया।

२

महाराज त्रैवृष्ण के विजय-प्रस्थान का शुभ मुहूर्त है। आज

इक्ष्वाकु नगरी मे सर्वत्र उत्साह फैला हुआ है। प्रजाओ के मुख-मडल पर आनद और उत्साह की रेखाए मिलकर एक अपूर्व रस का सचार कर रही हैं। स्त्रिया अटारियो पर प्रमोद की मगलमयी मूर्त्तिया बनी बैठी है। बालकवृन्द राजमार्गों पर अपने बालसुलभ कौतुक से किलकारिया भर रहे हैं, वृद्धजन प्राचीन इक्ष्वाकु-नरपति की विजय-यात्रा की मनोरजक कहानी सुनाकर अतीत को वर्तमान से जोडने का उद्योग कर रहे हैं। सप्तसिंधव के प्रतापशाली सम्राट् ऐक्ष्वाक त्रैवृष्ण त्र्यरुण की शोभा देखने ही योग्य है। उनके सिर पर शिप्रा (लोहे का बना हुआ शिरस्त्राण) विराजमान है तथा द्रापि (कवच) ने उनके शरीर को शत्रु-बाणो के लिए सर्वथा अभेद्य बना दिया है। बायें हाथ मे धनुष सुशोभित है और दाहिने मे भाला। बाणो से भरा हुआ निषग उनकी पीठ पर लटक रहा है। पैर मे वाराह के चाम का बना हुआ मजबूत जूता पडा हुआ है। जिस किसी व्यक्ति की दृष्टि ऐसे रण-बाकुरे वीर पर एक क्षण के लिए भी पड जाती, उसके नेत्रो के सामने बिजली चमक उठती। राजा के लिए एक बहुमूल्य रथ तैयार किया गया है जिसमे दो बडे फुर्तीले, तेज तथा मजबूत घोडे जोते गये है। भाला और तलवार से सुसज्जित अनेक वीर इस रथ के रक्षाकार्य मे नियुक्त किये गए है तथा रथ के ऊपर युद्ध के विशेष शस्त्रास्त्र तैयार रखे गये है। राजा के साथ चतुरगिणी सेना सन्नद्ध होकर प्रस्थान की प्रतीक्षा कर रही है। रणदुन्दुभि का गम्भीर घोष दुर्बलो के हृदय मे भय का, परन्तु सबलो के हृदय मे उत्साह का सचार कर रहा है। रथ के अग्रभाग को महर्षि वृश सुशोभित कर रहे है। कवच तथा शिप्रा से सुसज्जित उन्हे देख-

कर कौन कह सकता है कि कभी इस शरीर मे वल्कल वस्त्र भी विराजता होगा। स्फूर्ति तथा उत्साह, पराक्रम तथा तेजस्विता के साक्षात् अवतार वृश का कलेवर दर्शको के सामने एक अदृष्ट पूर्व दृश्य उपस्थित कर रहा है। जो कोई उन्हे देखता वही आश्चर्य से चकित हो जाता। कहा उनका वल्कलाच्छादित सौम्यभावाभिराम मजुल कलेवर और कहा आज का द्रापिमडित शिप्रा-विभूषित रणभयकर शरीर! महर्षि वृश ने रथ के ऊपर सारथि का आसन ग्रहण किया। सम्राट् त्र्यरुण रथी के स्थान पर आरूढ हुए। महर्षि ने घोडो के लगाम पकडकर उन्हे हाकना आरभ किया। रणदुन्दुभि वज उठी। अभियान का आरभ हो गया। लोगो ने साश्चर्य नयनो से देखा कि ब्राह्म तेज क्षात्रबल के साहचर्य मे ससार के कल्याण-साधन के लिए स्वय अग्रसर होकर निकला है।

सर्वत्र विजयलक्ष्मी सम्राट् की दासी बनी। प्रत्येक सग्राम मे राजा ने अपने शत्रुओ का दर्पदलन किया। धर्मविजयी त्रैवृष्ण ने अपने शत्रुराजाओ को परास्तकर उन्हे फिर से राज्यसिंहासन पर बैठा दिया। उसने उनके दर्प का दलन किया, शक्ति का नही। अभिमान का हरण किया, सपत्ति का नही। विजयमदिरा से मतवाला राजा चारो दिशाओ की विजययात्रा समाप्त कर अपनी राजधानी की ओर लौटा। आगे-आगे विजयी इक्ष्वाकुओ की विशाल सेना। रणदुन्दुभि का गम्भीर निनाद। रथो का घर्घर शब्द। एक ही रथ पर आसीन राजा त्र्यरुण तथा उनके सारथि महर्षि वृश। इस दृश्य को देखने के लिए इक्ष्वाकु मडल के नरनारी अपने आवश्यक कार्यों को छोड़कर सडक पर आ निकले। जनसघर्ष इतना अधिक था कि तिल

रखने की भी जगह न थी। भीड इतनी अधिक थी कि कोई किसीका तनिक भी ख्याल न करता। लोग एक दूसरे पर टूटे पडते थे। ऐसे जनकोलाहल के अवसर पर एक दुर्घटना ने लोगो के आनदमग्न हृदय पर दुख की बाढ लाकर उपस्थित की। लाख सावधानी रखने पर भी एक चचल बालक राजा के रथ के नाचे आ ही गया। अत्यत प्रयत्न करने पर भी उस निरीह बालक की प्राणरक्षा न हो सकी। कुतूहल की वेदी पर बालक ने अपने प्रिय प्राणो का हवन किया। ब्राह्मण-बालक की अकारण हत्या से दर्शक-मडली क्षुब्ध हो उठी। 'अब्रह्मण्य' की तुमुल ध्वनि आकाश को चीरने लगी। रग मे भग हो गया।

इस अघटित घटना ने राजा तथा पुरोहित दोनो के हृदय मे विषाद उत्पन्न कर दिया। दैव की प्रबलता पर दोनो खीझ उठे। पुरुषार्थ तथा भाग्य के बीच तुमुल युद्ध छिड गया। पुरुषार्थ कहता कि मेरी ही कमी से इस ब्राह्मण-शिशु की हत्या हुई, यदि मेरा प्रयत्न पूरा रहता, तो इसे बचाने मे सर्वथा समर्थ होता। दैव ने कहा कि इसमे तुम्हारी शक्ति बिल्कुल नही, यह तो मेरी सामान्य क्रीडा है। लाखो उद्योग भाग्य के विधान को टाल नही सकते। राजा तथा पुरोहित दोनो ने इस शास्त्रार्थ को सुना और दैव की महती शक्ति के सामने सिर झुकाया।

३

अपराध का निर्णय करना एक विषम पहेली है। इसे वही मनुष्य सुलझा सकता है, जिसका हृदय रागद्वेष के द्वन्द्वो से क्षुब्ध न होकर समत्व मे अवस्थित हो। धर्मबुद्धि की जागरूकता से ही सच्चा निर्णय किया जा सकता है। पक्षपात की आच इतनी तेज होती है कि जिसे वह छू लगे वह मनुष्य विरला

ही होता है। पक्ष तथा विपक्ष उभय कोटि के प्रमाण समान वलशाली हुए, तो निर्णय पर पहुचना एक दु साध्य व्यापार वन जाता है। इक्ष्वाकु लोगो की भी दशा आज ऐसी ही चिन्ता-जनक है। ब्राह्मण-वालक की हत्या के दोष का भागी कौन है? इसी विकट समस्या का हल करना है। वादी स्वय उन्हीके प्रजावत्सल भूपाल सम्राट् त्रैवृष्ण है और प्रतिवादी उन्हीके ब्रह्मवर्चसी पुरोहित महर्षि वृश है।

अपने पक्ष की पुष्टि मे राजा ने कहना आरभ किया, "महर्षे, इस रथ के वेग के नियन्ता आप ही थे। आपके ही हाथो मे मेरे इस रथ के घोडो की लगाम थी। आप अपनी इच्छानुसार इसका सचालन करते आते थे। रथ का वेग धीमा करना या उसे तेज करना आपके अधिकार की वात थी। अत सावधा-नतापूर्वक व्यवहार करने से आप इस ब्राह्मण-वालक को बचा सकते थे। यह प्रमाद आपकी ओर है। आप ही दोष के भाजन है। मैं तो आपके हाथ मे एक कठपुतली मात्र था। जिधर घुमावे, उधर घूमता था, जहा खडा करावें खडा होता था। ऐसी दशा मे मैं दोषी कैसे हो सकता हू?"

महर्षि वृश ने राजा के तर्कों को सुना और उनकी त्रुटि दिखलाते हुए वोले, "राजन्, आप यहा विवेक से च्युत हो रहे है। रथ के स्वामी आप है, मैं तो केवल आपकी आज्ञा का अनु-सरण मात्र करनेवाला हू। आप रथी है, मैं हू सारथि। मेरे हाथ मे वागडोर जरूर है, परंतु फल के अधिकारी आप ही है। इस विजय-यात्रा मे शुभ फलो के समान अशुभ फलो के भोक्ता आप ही है। मै तो तटस्थ हू, अपने कार्य का नि स्पृह भाव से निर्वाह करता हू। फल के भागी आप ही है। न तो मै विजय-

लक्ष्मी की प्राप्ति का अधिकारी हू, न ब्रह्महत्या के पातक का। आपके ही मस्तक पर विजयलक्ष्मी का तिलक है, वहीपर ब्रह्महत्या की कालिमा भी स्थान पावेगी। तटस्थ व्यक्ति का कोई भी अपराध नही होता।"

इक्ष्वाकुओ ने उभय पक्ष की बाते सुनी। अपनी विवेचन-बुद्धि के बल पर दोनो का तारतम्य विचार करना आरभ किया। स्वार्थ तथा परार्थ के बीच उनके हृदय मे भयकर द्वद्व मचने लगा। परार्थबुद्धि कहती—वृश का कहना बिल्कुल उचित है। सारथि सेवक मात्र है, स्वामी नही। सचालक है, फलभागी नही। स्वार्थबुद्धि कहती—महाराज त्रैवृष्ण हमारे माननीय, आराध्य महीपाल है। इनके ऊपर दोषारोपण करना क्या न्यायप्राप्त है? इक्ष्वाकुओ ने इस द्वद्व का अवश्य अनुभव किया। स्वार्थबुद्धि की मीठी बाते उन्हे अच्छी लगी। मुक्तकठ से उन्होंने स्वामी राजा को निर्दोष और सेवक पुरोहित को दोषी ठहराया। महर्षि वृश ने भी जनसमुदाय के इस निर्णय के सामने सिर झुकाया और निरपराधी होने पर भी उस क्षण के लिए अपनेको अपराधी माना। उन्होने अनेक अथर्ववेद के अभिचारो का प्रयोग किया तथा 'वार्श साम' का मजुल गायन किया। मत्र के बल से वह ब्राह्मण बालक पुनरुज्जीवित हो गया। ब्राह्म तेज के प्रत्यक्ष दृष्टात को इक्ष्वाकुओ ने विस्मित नेत्रो से निरखा। महर्षि इस मिथ्या दोषारोपण से मर्माहत हो उठे। उन्होंने इक्ष्वाकु-जनपद का परित्याग कर दिया। ब्राह्मण के अपमान से प्रकृति क्षुब्ध हो उठी। भगवान् भास्कर का मुखमडल क्रोध के मारे लाल हो गया। सध्या के तमोमडल के परदे के भीतर उन्होने अपनेको छिपा लिया। रात्रि के

निविड अधकार ने इक्ष्वाकु-जनपद को कालिमा के समुद्र मे डुबा दिया।

४

"ऊह, अभी तक भोजन तैयार नही हुआ", झिझक के साथ पति ने कहा, "सूरज के डूबने का समय आ पहुचा, मैं अपने कार्य को समाप्त कर घर आ पहुचा, परतु भोजन के पहुचने का समय अभी तक नही आया।"

"इसमे मेरा रचकमात्र भी दोष नही है", पत्नी ने गिड-गिडाते के हुए कहा।

"तो दोष है किसका ? क्या हमारे घर मे धान्य का अभाव है ?"

"नही।"

"तो क्या दाल और नमक की कमी है ?'

"जी, नही।"

"तब तो भोजन न बनाने का कारण तुम्हारा आलस्य ही है।"

"प्रियतम, यह भी ठीक कारण नही है। मैं दिनभर गाय के गोबर को इकट्ठा कर आग जलाने का उद्योग करती रही, परतु निर्धन के मनोरथ की तरह मेरी आशा पर सदा पानी फिरता रहा। आग के जलने पर भी उसका तेज न जाने कहा अतर्हित हो गया!"

"है! यह क्या कह रही है, पगली कही की। इस अश्रुतपूर्व घटना की बात किसी दूसरे के सामने कभी न कहना। व्यर्थ ही तुम्हारी हँसी होगी।"

"पतिदेव, मैं आपसे सच कहती हू। अग्निदेव की उस

तेजपूर्ण मूर्ति के लिए हमारे नेत्र बेचैन हो गये, परतु कही वह दिखाई नही पडी। अग्नि की वह तेजस्विता अंतर्हित हो गई है। भोजन के न बनने का यही मुख्य हेतु है।"

आज इक्ष्वाकु-मडल के प्रजावर्ग की दशा बडी दयनीय थी! कारु-दपती का यह वार्तालाप सर्वथा सत्य था। लोगो ने हजारो उद्योग किये, परतु अग्निनारायण के शरीर से ज्वाला का आविर्भाव न हो सका। गृहस्थो के घरो मे उदराग्नि की शाति के लिए न तो भोजन बनता था और न यज्ञो मे देवताओ के निमित्त हविष्य। आग मे घृत की आहुति डालने पर वह परिपक्व नही होती थी। राज्यभर मे प्रचड कोलाहल मच गया। प्रजा राजा के विरोध मे खडी होने लगी। 'राजा कालस्य कारणम्'। राजा के अपराधी से ही प्रजा के दु ख-द्वद्वो की वृद्धि होती है। अखिल प्रजावर्ग के मुख पर एक ही चर्चा थी—निर्दोष पुरोहित का अकारण प्रत्याख्यान (त्याग)। ब्राह्मण-बालक की हत्या मे राजा का ही समग्र दोप था। बेचारे सारथि का दोप ही क्या? राजा के अपराध को हम लोग भले पचा जाय, परतु वैश्वानर इसके लिए राजा को क्यो क्षमा करने लगे? 'अब्रह्मण्य' के गगनभेदी निनाद से पृथ्वी काप उठी।

प्रजावत्सल त्रैवृष्ण प्रजा की असमय आपदा से स्वय विचलित हो उठे। उन्होने मन्त्रियो से मत्रणा की। मन्त्रियो ने वैश्वानर रूप पुरोहित का प्रत्याख्यान ही इस आकालिक वज्राघात का प्रमुख कारण बतलाया। राजा ने मन्त्रियो के सामने अपना सिर झुका दिया। शक्ति ने न्याय के सामने पराजय स्वीकार की। राजा ने चारो ओर महर्षि वश को खोजने के लिए

अपने आदमियो को भेजा। वृश के आने पर राजा ने उनके चरणो पर अपना मस्तक रख दिया और इस असामयिक आपत्ति से बचाने के लिए बडी विनती की। प्रजा के असह्य क्लेश तथा राजा के विनीत सौम्यभाव को देखकर महर्षि वृश का कोप दया के रूप मे परिणत हो गया। अपने अपमान को भुलाकर पुरोहित अपने यजमान के ऊपर आनेवाली भारी विपत्ति को दूर करने के उपाय सोचने मे लग गये। अग्नि के अकस्मात् अंतर्धान होने का क्या कारण है? अपनी सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर महर्षि ने देखा कि राजा की पत्नियो मे से एक स्वय पिशाचिनी थी, जिसने पुरोहित की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर अग्नि के तेज को अपनी सेज के नीचे छिपा रखा था। पुरोहित राजा के साथ अत पुर मे स्वय गये और कुमार-रूपी अग्नि-तेज को सबोधित कर स्तुति करने लगे

"हे अग्निदेव, आप बृहत् ज्योति के साथ दीप्त होते हैं। अपने महत्त्व के कारण ससार के समग्र पदार्थों को प्रकट करते हैं। आप असुरो की दु ख से प्राप्त होनेवाली अकल्याण-कारिणी मायाओ का अभिभव कर दूर भगा देते हैं और राक्षसो के नाश के लिए अपने शृङ्ग के समान ऊपर उठनेवाली ज्वालाओ को तीक्ष्ण बनाते है।

"अनेक ज्वलाओ से युक्त, कामनाओ को पूरा करनेवाले, निरन्तर बढनेवाले अग्निदेव शत्रु से कण्टकरहित धन को प्राप्त कर लेते हैं। स्वय अन्य देवता लोग अग्नि की यह स्तुति किया करते हैं। भगवान् वैश्वानर कुश को इकट्ठा कर तथा हविष को सिद्ध कर यज्ञ करनेवाले मानवमात्र को शर्म—कल्याण—दे।"

महर्षि वृश के मुख से इन ऋक्मन्त्रो के निकलते ही

अग्निदेव की ज्वाला धधकने लगी। पिशाची क्षणमात्र मे भस्मसात् वन भूमि पर लोटने लगी। इक्ष्वाकु-जनपद भर मे अग्नि का आविर्भाव सम्पन्न हो गया। घर-घर मे अग्नि की प्रभा-भासुर मूर्ति धक्धक् कर जल उठी। पाकशाला मे भोजन वनने लगा। कारुदम्पती के मनोमालिन्य का अवसर सदा के लिए जाता रहा। यज्ञशाला मे होम-कुण्डो मे दी गई घृताहुतियो को अग्निदेव अपनी सप्त जिह्वाओ से ग्रहण करने लगे। रात्रि के निविड अन्धकार को दीपक-मालिका ने दूर करना आरम्भ किया। सर्वत्र जगतीतल पर सुख-समृद्धि का साम्राज्य प्रतिष्ठित हुआ। तव लोगो ने इस तथ्य के रहस्य को भली-भाति समझा कि व्राह्मतेज के पूर्ण सहयोग प्राप्त करने पर ही क्षात्र वल जगत् का कल्याण साधन कर सकता है। आध्यात्मिक शक्ति के अभाव मे शारीरिक शक्ति नितान्त व्यर्थ है। वह कोई कार्य सिद्ध नही कर सकती।

: ३ :

संगति का फल

१

वासना का राज्य अखण्ड है। वासना का विराम नही। फल मिलने पर यदि एक वासना को हम समाप्त करने मे समर्थ भी होते हैं, तो न जाने कहा से दूसरी, और उससे भी प्रबल, वासनाए पनप जाती हैं। प्रबल कारणो से कतिपय वासनाए कुछ काल के लिए सुप्त अवश्य हो जाती हैं, परन्तु किसी उत्ते-जक कारण के आते ही वे जाग पडती है। भला, कोई स्वप्न में भी सोच सकता था कि महर्षि सोभरि काण्व का दृढ वैराग्य मीनराज के सुखद गार्हस्थ्यजीवन को देख वायु के एक हल्के-से झकोरे से जड से उखडकर भूतलशायी वन जायगा।

महर्षि सोभरि कण्व-वश के मुकुट थे, उन्होने वेद-वेदाङ्ग का गुरु-मुख से अध्ययन कर धर्म का रहस्य भली-भांति जान लिया था। उनका श स्त्र का चिन्तन गहरा था, परतु उससे भी अधिक गहरा था उनका जगत् के प्रपचों से वैराग्य। जगत् के समग्र विषय-सुख क्षणिक है। चित्त को उनसे असली शाति नही मिल सकती! तव कोई विवेकी पुरुष अपने अनमोल जीवन को इन कौडी के तीन विषयो की ओर क्यो लगावेगा? आज का विशाल सुख कल ही अतीत की स्मृति वन जाता है। पल भर मे सुख की सरिता सूखकर मरुभूमि के विशाल वालू के ढेर के रूप मे परिणत हो जाती है, तव कौन विज्ञ पुरुष इस

सरिता के सहारे अपनी जीवन-वाटिका को हरी-भरी रखने का उद्योग करेगा ? सोभरि का चित्त इन भावनाओ की रगड से इतना चिकना वन गया था कि पिता-माता का विवाह करने का प्रस्ताव चिकने घडे पर जल-वूद के समान उसपर टिक न सका। उन्होंने वहुत समझाया, "अभी भरी जवानी है, अभिलाषाए उमडी हुई हैं, तुम्हारे जीवन का यह नया वसन्त है, कामनामञ्जरी के विकसित होने का उपयुक्त समय है, रसलोलुप चित्त-भ्रमर को इधर-उधर से हटाकर सरस माधवी के रसपान मे लगाना है। अभी वैराग्य का वाना धारण करने का अवसर नही।" परन्तु सोभरि ने किसीके शब्दो पर कान न दिया। उनका कान तो वैराग्य से भरे, अध्यात्म-सुख से सने, मजुल गीतो को सुनने मे न जाने कव से लगा हुआ था।

पिता-माता का अपने पुत्र को गार्हस्थ्य-जीवन मे लाने का उद्योग सफल न हो सका। पुत्र के हृदय मे भी देर तक द्वन्द्व मचा रहा। एक वार चित्त कहता—माता-पिता के वचनो का अनादर करना पुत्र के लिए अत्यंत हानिकारक है। परन्तु दूसरी वार एक विरोधी वृत्ति धक्का देकर सुझाती—'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रिय भवति।' आत्म-कल्याण ही सवसे वडी वस्तु ठहरी। गुरुजनो के वचनो और कल्याण-भावना मे विरोध होने पर हमे आत्म-कल्याण से पराङ्मुख नही होना चाहिए। सोभरि इस अन्तर्युद्ध को अपने हृदय के कोने मे वहुत देर तक छिपा न सके और घर से सदा के लिए नाता तोडकर उन्होंने इस युद्ध को भी विराम दिया। महर्षि के जवानी मे ही वैराग्य और अकस्मात घर छोड़ने से लोगो के हृदय विस्मित हो उठे।

२

पवित्र नदीतट था। कल्लोलिनी कालिन्दी कल-कल करती हुई वह रही थी। किनारे पर उगे हुए तमाल-वृक्षो की सघन छाया मे रगविरगी चिडियो का चहकना कानो मे अमृत उडेल रहा था। घने जगल के भीतर पशु स्वच्छन्द विचरण करते थे और नाना प्रकार के विघ्नो से अलग रहकर विशेष सुख का अनुभव करते थे। सायकाल गोधूलि की भव्य वेला मे गायें दूध से भरे थनो के भार से झुकी हुई जव मद गति से दूर के गावो की ओर जाती थी, तव यह दृश्य अनुपम आनद उत्पन्न करता था। यमुना की सतह पर शीतल पवन के हल्के झकोरो से छोटी-छोटी लहरिया उठती थी और भीतर मछलियो के झुण्ड-के-झुण्ड इधर-से-उधर कूदते हुए स्वच्छन्दता के सुख- का अनुभव कर रहे थे। यहा था शाति का अखड राज्य। इसी एकान्त स्थान को सोभरि ने अपनी तपस्या के लिए पसद किया।

सोभरि के हृदय मे तपस्या के प्रति महान् अनुराग तो था ही, स्थान की पवित्रता तथा एकातता ने उनके चित्त को हठात् अपनी ओर खीच लिया। यमुना के जल के भीतर वह तपस्या करने लगे। भादो मे भयकर वाढ के कारण यमुना-जल वडे ही वेग से वढने और वहने लगता, परन्तु ऋषि के चित्त में न तो किसी प्रकार का वढाव था और न किसी प्रकार का वहाव। पूस-माघ की रातो मे पानी इतना ठडा हो जाता कि जल-जन्तु भी ठड के कारण कापते, परतु मुनि के शरीर मे जल-शयन करने पर भी किसी प्रकार की जडता न आती। वर्षा के साथ-साथ ऐसी ठडी हवा चलती कि प्राणीमात्र के शरीर सिकुड जाते, परतु ऋषि के शरीर मे तनिक भी सिकुडन न आती।

ऐसी विकट तपस्या का क्रम वहुत वर्षों तक चलता रहा। सोभरि को वह दिन याद था, जब उन्होंने तपस्या के निमित्त अपने पिता का आश्रम छोडकर यमुना का आश्रय लिया था। उस समय उनकी भरी जवानी थी, परतु अव ? लवी दाढी और मुलायम मूछो पर हाथ फेरते समय उन्हे प्रतीत होने लगता कि अव उनकी उम्र ढलने लगी है। जो उन्हे देखता, आश्चर्य से चकित हो जाता। इतनी विकट तपस्या ! शरीर पर इतना नियत्रण ! सर्दी-गर्मी सह लेने की इतनी अधिक शक्ति ! दर्शको के आश्चर्य का ठिकाना न रहता। परतु महर्षि के चित्त की विचित्र दशा थी। वह नित्य यमुना के श्यामल जल मे मत्स्य-राज की अपनी प्रियतमा के साथ रतिक्रीडा देखते-देखते आनद से विभोर हो जाते। कभी पति अपनी मानवती प्रेयसी के मान-भजन के लिए हजारो उपाय करते-करते थक जाने पर आत्म-समर्पण के मोहनमत्र के सहारे सफल होता और कभी वह मत्स्यसुन्दरी अठिलाती, नाना प्रकार से अपना प्रेम जताती, अपने प्रियतम की गोदी का आश्रय लेकर अपनेको कृतकृत्य मानती। झुंड-के-झुड वच्चे मत्स्य-दम्पति के चारो ओर अपनी ललित लीलाए किया करते और उनके हृदय मे प्रमोद-सरिता वहाया करते।

ऋषि ने देखा, गार्हस्थ्य-जीवन मे वडा रस है। पति-पत्नी के विविध रसमय प्रेम-कल्लोल ! वाल-वच्चो का स्वाभाविक सरल सुखद हास्य ! परतु उनके जीवन मे रस कहा ? रस (जल) का आश्रय लेने पर भी चित्त मे रस का नितात अभाव था। उनकी जीवन-लता को प्रफुल्लित करने के लिए कभी वसन्त नही आया। उनके हृदय की कली को खिलाने के लिए मलयानिल कभी न

बहा। भला, यह भी कोई जीवन है। दिर-रात शरीर को सुखाने का उद्योग, चित्तवृत्तियो को दवाने का विफल प्रयास। उन्हे जान पडता मछलियो के छोटे-छोटे वच्चे उनके नीरस जीवन की खिल्ली उडा रहे हैं।

सगति ने सोई हुई वासना को जोरो से झकझोरकर जगा दिया। वह अपनेको प्रकट करने के लिए मार्ग खोजने लगी।

३

तप का उद्देश्य केवल शरीर को नाना प्रकार के साधनो से तप्त करना नही है, प्रत्युत मन को तप्त करना है। सच्चा तप मन मे जमे हुए काम के कूडे-करकट को जलाकर राख बना देता है। आग मे तपाये हुए सोने की भाति तपस्या से तपाया गया चित्त खरा उतरता है। तप स्वय अग्निरूप है। उसकी साधना करने पर क्या कभी चित्त मे अज्ञान का अधकार अपना घर वना सकता है? उसकी ज्वाला वासनाओ को भस्म कर देती है और उसका प्रकाश समग्र पदार्थों को प्रकाशित कर देता है। शरीर को पीडा पहुचाना तपस्या का स्वागमात्र है। नही तो, क्या इतने दिनो की घोर तपस्या के बाद भी सोभरि के चित्त मे प्रपच से विरति (ससार से वैराग्य) और भगवान् के चरणो मे सच्ची रति न होती?

वैराग्य से वैराग्य ग्रहण कर तथा तपस्या को तिलाजलि देकर महर्षि सोभरि प्रपच की ओर मुडे और अपनी गृहस्थी जमाने मे जुट गये। विवाह की चिन्ता ने उन्हे कुछ वेचैन कर डाला। गृहिणी घर की दीपिका है, धर्म की सहचारिणी है। पत्नी की खोज मे उन्हे दूर-दूर जाना पडा। रत्न खोज करने पर ही प्राप्त होता है, घर के कोने मे अथवा दरवाजे पर

विखरा हुआ थोडे ही मिलता है। उस समय महाराज त्रसद्दस्यु के प्रवल प्रताप के सामने सप्तसिंधु के समस्त नरेश नतमस्तक थे। वह पुरुवश के मरिण थे, पुरुकुत्स के पुत्र थे। उनका 'त्रसद्दस्यु' नाम निताात सार्थक था। आर्यों की सभ्यता से सदा द्वेष रखने-वाले दस्युओ के हृदय मे इनके नाममात्र से कम्प उत्पन्न हो जाता था। वह सप्तसिंधु के पश्चिमी भाग पर शासन करते थे। महर्षि को यमुनातट से सुवास्तु (सिंधुनद की सहायक स्वात नदी) के तीर पर राजसभा मे सहसा उपस्थित देखकर उन्हे उतना आश्चर्य नहीं हुआ, जितना उनके राजकुमारी से विवाह करने के प्रस्ताव पर। इस वृद्धावस्था मे इतनी कामुकता! इनके तो अव दूसरे लोक मे जाने के दिन समीप आ रहे हैं, परतु आज भी इस लोक मे गृहस्थी जमाने का यह आग्रह है! परतु सोभरि की इच्छा का विघात करने से भी उन्हे भय मालूम होता था। उनके हृदय मे एक विचित द्वन्द्व मच गया। एक ओर तो वे अभ्यागत तपस्वी की कामना पूर्ण करना चाहते थे, परतु दूसरी ओर उनका पितृत्व चित्त पर आघात देकर कह रहा था— इस वृद्ध जरद्गव के गले मे अपनी सुमन-सुकुमार सुता को मत वाधो। राजा ने इन विरोधी वृत्तियो को वडी कुशलता से अपने चित्त के कोने मे दवाकर सोभरि के सामने स्वयवर का प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा, "क्षत्रिय-कुल की कन्याए गुणवान् पति को स्वय वरण किया करती हैं। अत आप मेरे साथ अत पुर मे चलिये। जो कन्या आपको अपना पति वनाना स्वीकार करेगी, उसे मै आपके साथ विधिवत् विवाह दूगा।" राजा वृद्ध को अपने साथ लेकर अत पुर मे चले, परतु उनके कौतुक की सीमा न रही, जव वह वृद्ध अनुपम सर्वांग-

शोभन युवक के रूप मे महल मे दीख पड़ा। रास्ते मे ही सोभरि ने तपस्या के बल से अपना रूप बदल डाला। जो देखता वही मुग्ध हो जाता। स्निग्ध श्यामल शरीर, ब्रह्मतेज से चमकता हुआ चेहरा, उन्नत ललाट, अगो मे यौवनसुलभ स्फूर्ति, नेत्रो मे विचित्र दीप्ति, जान पडता था मानो स्वय अनग अग धारण कर रति की खोज मे सजे हुए महलो के भीतर प्रवेश कर रहा हो। सुकुमारी राज-कन्याओ की दृष्टि इस युवक तापस पर पडी। चार आखें होते ही उनका चित्तभ्रमर मुनि के रूप-कुसुम की माधुरी चखने के लिए विकल हो उठा। पिता का प्रस्ताव सुनना था कि सबने मिलकर मुनि को घेर लिया और एक स्वर से मुनि को वरण कर लिया। राजा ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

सुवास्तु के सुन्दर तट पर विवाह-मण्डप रचा गया। महाराज त्रसद्दस्यु ने अपनी पचास पुत्रियो का विवाह महर्षि सोभरि काण्व के साथ एक साथ पुलकितवदन होकर कर दिया और दहेज मे विपुल सम्पत्ति दी—सत्तर-सत्तर गायो के तीन झुण्ड, श्याम वर्ण वृषभ, जो इन सबके आगे-आगे चलता था, अनेक घोडे, नाना प्रकार के रग-विरगे कपडे, अनमोल रत्न। गृहस्थ जीवन को रसमय बनानेवाली समस्त वस्तुओ को एक साथ एक ही जगह पाकर मुनि की कामना-वल्ली लहलहा उठी। इन चीजो से सज-धजकर रथ पर सवार हो मुनि जब यमुना-तट की ओर आ रहे थे, उस समय रास्ते मे वज्रपाणि भगवान् इन्द्र का देवदुर्लभ दर्शन उन्हे प्राप्त हुआ। ऋषि आनन्द से गद्गद् स्वर मे स्तुति करने लगे -

"हे भगवन्, आप अनाथो के नाथ है और हमलोग बन्धुहीन

ब्राह्मण हैं। आप प्राणियों की कामनाओं की तुरत पूर्ति करने वाले हैं। आप सोमपान के लिए अपने तेज के साथ हमारे यहां पधारिये।

स्तुति किसको प्रसन्न नहीं करती। इस स्तुति को सुनकर देवराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और ऋषि से आग्रह करने लगे कि वर मागो। सोभरि ने अपने मस्तक को झुकाकर विनय-भरे शब्दो मे कहना आरम्भ किया, "प्रभो! मेरा यौवन सदा बना रहे; मुझमे इच्छानुसार नाना रूप धारण करने की शक्ति हो, अक्षय रति हो और इन पचास पत्नियो के साथ एक ही समय रमण करने की सामर्थ्य मुझमे हो जाय। वह विश्व-कर्मा मेरे लिए सोने के महल बना दें, जिनके चारो ओर कल्पवृक्ष से युक्त पुष्प-वाटिकाए हो। मेरी पत्नियो मे किसी प्रकार की स्पर्धा, परस्पर कलह कभी न हो। आपकी दया से मै गृहस्थी का पूरा-पूरा सुख उठा सकू।"

इन्द्र ने गम्भीर स्वर मे कहा, "तथास्तु?" देवता ने भक्त की प्रार्थना स्वीकार कर ली। भक्त का हृदय आनद से गद्गद् हो उठा।

४

वस्तु के पाने की आशा में जो आनद आता है, वह उसके मिलने पर नही। मनुष्य उसे पाने के लिए बेचैन बना रहता है, लाखो कोशिशे करता है, उसकी कल्पना से ही उसके मुह से लार टपकने लगती है, परतु वस्तु के मिलते ही उसमे विरसता आ जाती है, उसका स्वाद फीका पड जाता है, उसकी चमक-दमक जाती रहती है और रोज-रोज की गले पडी वस्तुओ के ढोने के समान उसका भी ढोना दूभर हो जाता है।

गृहस्थी मे दूर से आनद अवश्य आता है, परतु गले पडने पर उसका आनद उड जाता है, केवल तलछट बाकी रह जाता है।

महर्षि सोभरि के लिए गृहस्थी की लता हरी-भरी सिद्ध नही हुई। बडी-बडी कामनाओ को हृदय मे लेकर वे इस घाट उतरे थे, परन्तु यहा विपदा के जल-जंतुओ के कोलाहल से सुखपूर्वक खडा होना भी असम्भव हो गया। विचारशील तो वे थे ही। विषयो-सुखो को भोगते-भोगते वैराग्य—और अब सच्चा वैराग्य—उत्पन्न हो गया। सोचने लगे—"क्या यही सुखद जीवन है जिसके लिए मैने वर्षो की साधना का तिरस्कार किया है? मुझे धन-धान्य की कमी नही है, गो-सम्पत्ति मेरी अतुलनीय है, भूख की ज्वाला के अनुभव करने का अशुभ अवसर मुझे कभी नही आया, परन्तु मेरे चित्त मे चैन नही। कल-कण्ठ कामिनियो के कोकिल-विनिन्दित स्वर ने मेरी जीवन-वाटिक मे वसन्त के लाने का उद्योग किया, वसन्त आया, पर उसकी सरसता टिक न सकी। बालक-बालिकाओ की मधुर काकली ने मेरे जीवनोद्यान मे पावस को ले आने का प्रयत्न किया, परतु मेरा जीवन सदा के लिए हरा-भरा न हो सका। हृदय-वल्ली कुछ काल के लिए जरूर लहलहा उठी, परतु पतझड के दिन शीघ्र आ धमके, पत्ते मुरझाकर झड़ गये। क्या यही सुखमय गार्हस्थ्य-जीवन है? बाहरी प्रपच मे फसकर मैने आत्म-कल्याण को भुला दिया। मानव-जीवन की सफलता इसीमे है कि योग के द्वारा आत्म-दर्शन किया जाय—'यद्योगेनात्मदर्शनम्', परन्तु भोग के पीछे मैने योग को भुला दिया, अनात्मा के चक्कर मे पड़कर मैंने आत्मा को बिसार दिया और प्रेयोमार्ग का अवलम्बन कर मैने 'श्रेय'—

अत्यतिक सुख—की उपेक्षा कर दी। भोगमय जीवन वह भयावनी भूल-भुलैया है, जिसके चक्कर मे पडते ही हम अपनी राह छोड वेराह चलने लगते है और अनेक जन्म चक्कर काटने मे ही विता देते है। कल्याण के मार्ग मे जहा से चलते है, घूम-फिरकर पुन वही आ जाते हैं। एक डग भी आगे नही बढ पाते।

"कच्चा वैराग्य सदा धोखा देता है। मैं समझता था कि इस कच्ची उम्र मे भी मेरी लगन सच्ची है, परतु मिथुनचारी मत्स्यराज की सगति ने मुझे इस मार्ग मे ला घसीटा। सच्चा वैराग्य हुए विना भगवान् की ओर वढना प्राय असभव-सा ही है। इस विरति को लाने के लिए साधु-सगति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। विना आत्मदर्शन के यह जीवन भार है। अव मैं अधिक दिनो तक इस वोझ को नही ढो सकता।"

दूसरे दिन लोगो ने सुना—महर्षि सोभरि की गृहस्थी उजड गई। महर्षि सच्चे निर्वेद से यह प्रपच छोड जगल मे चले गये और सच्ची तपस्या करते हुए भगवान् मे लीन होगये। जिस प्रकार अग्नि के शात होते ही उसकी ज्वालाए वही शात हो जाती हैं, उसी प्रकार पति की आध्यात्मिक गति को देखकर पत्नियो ने भी उनकी सगति से सद्गति प्राप्त की। सगति का फल विना फले नही रहता। मनुष्य को चाहिए कि वह सज्जनो की सगति का लाभ उठाकर अपने जीवन को धन्य वनावे। दुष्टो का सग सदा हानिकारक होता है। विपयी पुरुप के सग मे विषय उत्पन्न न होगा तो क्या वैराग्य उत्पन्न होगा? मनुष्य को आत्मकल्याण के लिए सदा जागरूक रहना चाहिए। जीवन का यही लक्ष्य है। पशु-पक्षी के समान जीना, अपने स्वार्थ के पीछे हमेशा लगे रहना मानवता नही है।

: ४ :

सोने की प्यास

१

सम्राट् हरिश्चद्र वैधस के चित्त मे तनिक भी चैन न था। विषाद की कालिमा ने विशाल, समृद्ध इक्ष्वाकुमडल के एकछत्र अधिपति के मन को कलुषित वना रखा था। उनका प्रासाद समस्त सौख्य से सुसज्जित था। विजयी इक्ष्वाकु क्षत्रियो पर उनका एकमात्र प्रभुत्व था, पर सम्राट् के चित्त का विकार इन वस्तुओ के रहने पर भी रचकमात्र कम नही होता। उनका महल रुक्ममडित एकशत रानियो की देह-प्रभा से चमक उठता, परतु उनके हृदयगत विपाद का घना अधकार तनिक भी न्यून नही हुआ। सम्राट् के अन्यमनस्क होने का प्रधान कारण पुत्र का अभाव था। उनके जीवन के उद्यान मे पतझड के दिन आ गये थे, परतु अभी तक न तो उनके नेत्रो की पुत्र के मुग्ध मुख-मडल के देखने की लालसा ही चरितार्थ हुई थी और न उनके कानो की पुत्र की तोतली वोली सुनने की इच्छा ही पूरी हुई थी। उनका हृदय उन दिनो के लिए लालायित था जव पुत्र के पैर की पैजनी के रुनझुन शब्द से उनके अत पुर का प्रागण मुखरित होगा तथा उनकी हृदयवीणा एक वार भी झंकृत हो उठेगी। दिन आये और चले गये। राते आई और चली गई परतु हरिश्चद्र के हृदय मे पुत्र-दर्शन की लालसा आई, परतु गई नही।

सयोगवश एक दिन महर्षि नारद ने दर्शन दिया। ससार के उपकार के लिए जीवन बितानेवाले महात्मा को देखकर सम्राट् का हृदय आनद से विकसित हो उठा।

राजा ने नारद के सत्कार करने मे किसी प्रकार की कमी नही होने दी। ऋषि कुछ क्षणो तक अवश्य प्रसन्न हुए, परतु राजा का मलिन मुख देखकर उनका हर्ष खेद के रूप मे परिणत हो गया। उन्होंने उनके दुख का कारण पूछा। राजा ने अपने विषाद का कारण कह सुनाया और वडे विनय से पूछा, "महर्षे, क्या कारण है कि विवेक से सपन्न मनुष्य तथा विवेक से हीन पशुपक्षी पुत्र की प्राप्ति के लिए समान भाव से इतने उत्सुक रहते है। पुत्र-प्राप्ति से उनके किस पुरुषार्थ की सिद्धि होती है, जिसके बिना वे सर्वथा सुखमय जीवन को भी दुख तथा निराशा मे विताया करते हैं ?

"वडा ही सुन्दर प्रश्न है, राजन्"। ऋषि ने वडे प्रेम से कहा और यह कहते समय उनके होठो पर स्वाभाविक प्रसन्नता की रेखा दौड गई। "पुत्र तो गार्हस्थ्य जीवन की मूल भित्ति है। इस ससार मे आनेवाले प्रत्येक आर्य के ऊपर तीन ऋणो का वोझ रहता है, जिनका चुकाना उसका परम कर्तव्य है। अध्यापन के द्वारा ऋषि-ऋण तथा यज्ञ-याग से देव-ऋण का तो परिशोध किया जा सकता है, परतु पुत्र के विना पितृऋण से मनुष्य उऋण नही हो सकता। पुत्र के द्वारा पिता ऐहिक तथा आमुष्मिक—लौकिक और पारलौकिक – उभयविध गहन अधकार के निराकरण मे समर्थ होता है। पुत्र वस्तुत अति तारिणी तथा इरावती नौका है—दुखार्णव से पार करनेवाली तथा अन्न से सपन्न नाव है। मनुष्य के लिए अन्न ही प्राण है,

वस्त्र ही शरण—गृह—है, हिरण्य रूप है, पशु विवाह है, जाया सखा है, दुहिता कृपण रूप है, और पुत्र ज्योति है जो पिता के अधकार को दूर कर उसे परम व्योमन् मे, परम ब्रह्म मे, प्रतिष्ठित कर देता है। इसीलिए गृहस्थ के लिए जाया का भी नितात महत्व है। पति स्वय गर्भ रूप से पत्नी मे प्रवेश करता है और दसवें महीने मे पुन नवीनरूप धारण कर उत्पन्न होता है। इसी कारण पुत्र आत्मा का रूप माना जाता है। 'जाया' शब्द के महत्त्व को क्या कभी आपने विचारा है ? पिता के पुत्र रूप से जन्म लेने के कारण ही जाया का जायात्व निष्पन्न होता है। भारतीय सस्कृति मे गृहस्थ आश्रम की इसीलिए अन्य आश्रमो की अपेक्षा विशेष प्रतिष्ठा मानी गई है। उस आश्रम के धर्म को यथावत् निर्वाह करना चाहिए। यह सिद्धात नितात सत्य है कि पुत्र के विना गृहस्थ की गति नही होती। शास्त्रकारो ने समाज को अक्षुण्ण बनाये रखने का यही उपाय वतलाया है।' राजा ने कहा, "भगवन्, आपका कथन विल्कुल ठीक है, परतु क्या कोई उपाय है, जिससे यह मनोरथ सिद्ध किया जाय, इस विशाल इक्ष्वाकु राज्य का उत्तराधिकारी न पाने के कारण ही मैं अपनेको हतभाग्य मानता हू।"

"राजन्, उपायो की कमी नही है। उपाय मे पूर्ण श्रद्धा के भाव रखने से ही फल की प्राप्ति अवश्यभावी है। प्राकृत उपायो के फलदायी न होने पर अतिप्राकृत उपाय का निष्पादन अवश्य फलदायी होगा। पुत्र प्राप्ति के लिए वरुण से सच्चे हृदय से प्रार्थना करो। मुझे पूरा विश्वास है, आपकी कामनावल्लि निश्चय ही पुष्पित तथा फलित होगी। वरुण सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् है। उनकी दृष्टि वडी व्यापक है— वे 'उरुचक्षा'

तथा 'विश्वतश्चक्षु' हैं। वे मनुष्यो की हृदयगत भावनाओ तथा कामनाओ के जानने मे सर्वथा कृतकार्य होते हैं। कोई भी कार्य कितना भी छिपाकर किया जाय, वह वरुण की दृष्टि से ओझल नही हो सकता। इस ब्रह्माड के सचालन तथा नियमन का सूत्र इन्हींके हाथ मे है। इसीलिए वे नियम के रक्षक तथा व्रतधारी कहलाते हैं। सच्चे हृदय, सरल भाव, से की गई प्रार्थना के सफल होने मे तनिक भी विलव नही होता।"

नारद की आज्ञा मानकर सम्राट् हरिश्चद्र ने भक्ति से गद्गद् स्वर मे वरुणदेव से विनम्र प्रार्थना की, "भगवन्, यदि मुझे पुत्र उत्पन्न होगा, तो उसे मैं आपको समर्पण कर दूगा। मेरी पुत्र-प्राप्ति की वलवती लालसा को सफल वनाइये।"

२

सम्राट् हरिश्चद्र की राजधानी मे आज आनद का सोता वह रहा है। जिधर देखिये उधर ही आनद की मस्ती छाई हुई है। सगीत की स्वरलहरी से समस्त नगरी प्रतिध्वनित हो उठी है। पवन के झोके से नाचनेवाली लताए झुक-झुककर अपना उल्लास प्रकट कर रही हैं। कोकिलाए अपनी प्यारी कूक सुनाकर अपने वधु वर्गों की ओर से इस उत्सव का स्वागत कर रही है। राजा के महल मे तथा प्रजा के घरो मे परिचारिकाए मगल गीत गाकर अपने हृदय का हर्ष अभिव्यक्त कर रही है। राजा का मुर्झाया मुखमडल खिल उठा है। रानियो की आखो मे आनद के आसू झलकने लगे हैं। हर्ष का आज विशेष कारण है। सम्राट् हरिश्चद्र को पुत्र उत्पन्न हुआ है। उनकी वर्षों की कामना आज सफल हुई है।

इधर पुत्र का उत्पन्न होना था, उधर वरुणदेव आकर उपस्थित हो गये। उनके शरीर पर सुवर्ण का बना कवच नेत्रो को चकाचौंध कर रहा था। उनके हाथ मे पाश चमक रहा था। राजा को यह समझने मे देर न लगी कि जिनकी कृपा से मेरे भाग्य का यह सुप्रभात हुआ है वे ही वरुण-देव साक्षात् उपस्थित हुए हैं। आते ही उन्होने राजा से कहना आरभ किया—

राजन्, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो और इस बालक को मुझे समर्पण करो। राजा ने नम्रभाव के साथ कहा–"देव, यह सद्यो-जात शिशु अभी तक अपवित्र है, यज्ञ के लिए उपयुक्त, पवित्र पात्र नही है। दस दिनो के बीतने के बाद यह पवित्र होगा।' वरुण लौट गये और दस दिनो के पीछे आकर बालक को मागने लगे। राजा ने कहा, "जब पशु के दात जम जाते है तब वह पवित्र होता है। इसके दात जम जाने दीजिये। दातो के उगने पर वरुण ने अपनी माग दुहराई। राजा ने उत्तर दिया, "जब पशु के दात गिर जाते हैं, तब वह पवित्र होता है। इसके दात गिर जाय, तब इसके द्वारा मैं आपका यजन करूगा। वरुण दातो के गिरने के बाद आये और यज्ञ करने की स्मृति दिलाई। राजा ने फिर से दात निकल जाने तक प्रतीक्षा करने की बात कही। बालक के दात फिर आने के साथ वरुण भी आये, परन्तु राजा ने क्षत्रिय के लिए कवच धारण करने की योग्यता को पवित्रता का चिन्ह बताया। वरुण ने बात मान ली। जब रोहित धनुषबाण धारण करने तथा कवच पहनने की अवस्था मे आया, तब राजा हरिश्चन्द्र ने उसे अपने पास बुला-कर सारी घटनाए क्रमश. सुना दी, "तात, वरुण के अलौकिक

अनुग्रह से तुम्हारा जन्म हुआ है। वरुण ने वडा उपकार किया है। अब तुम योग्य हो, युवा हो, पवित्र हो, अब मुझे अपनी प्रतिज्ञा के पालन का समय आ गया है। अब तुम तैयार हो जाओ। देवता के लिए शरीर का समर्पण मनुष्य के लिए सबसे वडा श्लाघनीय कार्य है।"

रोहित ने सारी वाते सुनी, परन्तु पिता की वातो को बिना कान किये उसने जगल का रास्ता पकड़ा। शरीर मे यौवन की उमग थी। अग-अग मे वीररस प्रवाहित हो रहा था। नसो मे गरम लहू वहता था। भला ऐसी दशा मे वह निर्वल की तरह आत्म-समर्पण करने के लिए कैसे उद्यत हो सकता था ? धनुप-वाण हाथ मे लेकर वह जगल मे चला गया। धीरे-धीरे दिन वीत चले, दिनो के वाद महीने आये और चले गये, एक नही, दो नही, पूरे वारह, परन्तु रोहित जगल से नही लौटा। साल भर तक वरुण ने उसकी प्रतीक्षा की, परतु उसके न लौटने पर वरुण के कोप से राजा हरिश्चन्द्र के शरीर मे भीपण रोग का आक्रमण हुआ। जल के अधिपति वरुण के क्षोभ से शरीर का जलीय तत्त्व क्षुब्ध हो उठा। राजा को जलोदर ने आ घेरा। देखते-देखते उनका उदर वढने लगा। चेहरे का रग पीला पड गया। प्रजा चिन्तित हो उठी। देवता के कोप के प्रत्यक्ष फल को देखकर सवके हृदय मे विपाद तथा त्रास का सचार हो गया।

३

राजा की वीमारी की वात देशभर मे दावाग्नि की तरह फैल गई। जो सुनता उसीके नेत्र विपाद के आसुओ से सजल हो जाते। धीरे-धीरे इस घटना ने अरण्य के विजन प्रान्तर के

भीतर प्रवेश किया। रोहित के कानो मे भी इसकी ध्वनि गूजने लगी। घटना के श्रवणमात्र से उसकी दशा मे वडा विचित्र परिवर्तन हो गया। अरण्य के भीतर भ्रमण का उत्साह जाता रहा, मन मे एक नये प्रकार की अशाति ने आसन जमाया। वह सोचने लगा कि मैंने इस जगल मे आकर वडा ही जघन्य कार्य किया। वेचारे पिता पर इस आकस्मिक आपत्ति के आने का एकमात्र कारण मै ही हू। उसके नेत्रो के सामने अपने पिता का वह चमकता हुआ चेहरा उपस्थित हो आया, जव वे आनन्द से आत्मविस्मृत होकर रोहित को अपनी गोदी मे खिलाया करते थे। हाय! उस सौम्य मूर्ति मे अव कितना परिवर्तन हो गया होगा। रोग के विपम प्रभाव के चितनमात्र से उसके रोगटे ख ड़े होने लगे। उसने अव लौटने का निश्चय किया, परतु स्वार्थ बुद्धि जोर का धक्का देकर धीरे से कहने लगी—क्यो अपने स्वच्छन्द जीवन के ऊपर ताला लगाना चाहते हो। इस वार वरुण के सामने तुम्हारा समर्पण निश्चित है। ऐसी दशा मे तुम्हे अपने प्यारे प्राणो का मोह नही है जो इस विषम मार्ग मे अग्रसर वन रहे हो। परतु परमार्थ बुद्धि कहती—पिता की विपत्ति के एकमात्र कारण तुम ही हो। तुम्हारे इस विपम कृत्य के कारण ही वह देवताओ की दृष्टि मे दोपी वने हुए है। तुम ही ने हरिश्चन्द्र की विमल कीर्ति पर कालिमा पोतने का प्रयत्न किया है। उस प्रजावत्सल महीपति को प्रजा की दृष्टि मे हेय वनाने का अपराध तुम्हारे ही ऊपर है। अव भी समय है। अपने पापो का प्रायश्चित्त करो। पिता का कुछ भी तो उपकार करो। रोहित ने इस विरोध का अनुभव किया और परमार्थबुद्धि के कथन को शिरोधार्य कर वह जगल से नगर की

ओर लौट पडा।

थोडी ही दूर जाने के अनतर उसे एक विचित्र पुरुप के दर्शन हुए। उनके वलिष्ठ गठीले शरीर पर ब्रह्मतेज चमक रहा था। उन्हे देखते ही किसी विशिष्ट पुरुप का उन्हे आभास मिला। रोहित को सबोधित कर वह पुरुष कहने लगा, "हे रोहित, हम लोगो ने सुन रखा है कि न थकनेवाले पुरुष को श्री वरण नही करती। उद्योगशील वनकर काम मे अपनेको श्रात वना देनेवाला पुरुष ही लक्ष्मी का भाजन वनता है। गुणो मे श्रेष्ठ होने पर भी जो व्यक्ति मनुष्यो मे ही टिकनेवाला है, वधुओ के घर मे पडा रहता है, वह समाज मे नितात तुच्छ गिना जाता है। इद्र सचरणशील पुरुष के मित्र होते है। अत तुम सचरणशील वने रहो, घर न लौटो।" उसका उपदेश रोहित के हृदय मे घर कर गया और वह साल भर तक उसी वन मे घूमता रहा।

दूसरे वर्ष घर लौटने के समय फिर वही ब्राह्मण देवता उद्योग की स्तुति करने लगे, "पर्यटन करनेवाले पुरुष की दोनो जघाए शोभासम्पन्न हो जाती हैं, लताओ के पुष्पित होने के समान जघाए भी पुष्ट तथा सुदर वन जाती हैं और उसकी आत्मा फल-सम्पन्न हो जाती है। उसके पाप पवित्र तीर्थस्थान मे देव-दर्शन से सदा के लिए सो जाते हैं। अत तुम अभी सचरण मे निरत वनो।" रोहित ने इस उपदेश का अक्षरश पालन किया और तीसरे वर्प के आरभ मे गृहोन्मुख होने पर फिर उसी व्यक्ति ने उसी प्रकार निपेध किया। चौथे तथा पाचवे साल के आरभ में इसी घटना की पुनरावृत्ति हुई। पुरुषरूप मे इद्र ने उद्यम तथा पर्यटन की प्रशसा करते विराम

नही लिया। वह रोहित को सदा यही उपदेश दिया करते कि हाथ-पर-हाथ रखकर बैठनेवाले व्यक्ति का भाग्य बैठा रहता है, उठनेवाले का भाग्य उठना है, लेटनेवाले का भाग्य भी लेटा रहता है और सचरणकारी का भाग्य गतिशील बना रहता है। शयन की दशा कलि है, निद्रा का परित्याग द्वापर है, उत्थान त्रेता है और सचरण कृत-युग है। निद्रा से लेकर सचरण तक की चारो अवस्थाएं ही चतुर्युग का प्रतीक रूप है। पर्यटन से मधु प्राप्त होता है, सचरण से स्वादु उदुम्बर प्राप्त होता है, इस तत्त्व के निदर्शक भगवान् सविता हैं, जो सतत सचरण करने पर कभी श्रात नही होते।

इद्र के इस उपदेशानुसार जगल मे भ्रमण करते समय रोहित को एक नई बात सूझी—क्या किसी अन्य मनुष्य को देकर मै अपनी निष्कृति पा सकता हू ? यज्ञ मे प्रतिनिधि से अनुष्ठान की प्रथा खूब प्रचलित है। इस उपाय से दोनो बाते सिद्ध हो जाती हैं—वरुण की प्रसन्नता होगी तथा अपने जीवन से भी हाथ धोना न पडेगा।

४

सध्या का समय था। भगवान् भास्कर अपनी किरणो को समेटकर पश्चिम क्षितिज के नीचे जा चुके थे। अधकार धीरे-धीरे गगनमडल मे अपना काला पख फैला रहा था। रजनी अपना काला घूघट काढने के लिए उतावली कर रही थी। दिनभर आहार की खोज मे निकलनेवाले पक्षी अपने नीड-वृक्ष पर बैठकर उसी तरह तुमुल कलरव कर रहे थे जिस तरह घर लौटते समय रोहित के हृदय मे विभिन्न

वृत्तियां प्रमुखता पाने के लिए आपस मे लड-झगड रही थी। रोहित ने जो दृश्य देखा, उससे उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। सामने थी एक टूटी-फूटी, जीर्ण-शीर्ण पर्णकुटी, जिसके द्वार पर वठे हुए पाच व्यक्ति कभी अपने भाग्य को कोस रहे थे और कभी अपने कर्म को। अन्न न मिलने से शरीर सूखकर काटा हो गया था। भूख के मारे वे व्याकुल थे। इस निर्जन वन मे न कोई उनका सहायक था और न कोई उदार धनिक था, जिसकी सहानुभूति उनके जीवन को दु ख-समुद्र से वचाने के लिए नौका का कार्य करती। ये पाचो जन एक ही ब्राह्मण-परिवार के अन्तर्भुक्त थे—ब्राह्मण दम्पती और तीन पुत्र। ब्राह्मण का नाम था अजीगर्त सौयवसि और उनके तीनो पुत्रो के नाम थे शुन पुच्छ, शुन शेप और शुनो लाङ्गूल। रोहित के मुखमण्डल से ओजस्विता तथा पराक्रम टपकता था। ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति को अकस्मात् अपने पास आया देख इन लोगो ने ढाढस वाधा। इनकी शारीरिक अवस्था देखकर रोहित को इनकी मानसिक स्थिति समझते देर न लगी, उसने इनका उपकार करना चाहा, परन्तु स्वार्थ को भुलाकर नही। रोहित का मस्तिष्क सलाह देने लगा—इन ऋषि-पुत्रो मे एक को क्यो नही खरीद लेते ? ऋषि की भी विपत्ति टल जायगी और तुम्हारी भी निष्कृति वन आवेगी। पर हृदय द्रुतवेग से कह उठा—वालक को माता-पिता की गोदी से छीन लेना कहा का न्याय है। वेचारे गरीव है। भूख की मार मर रहे हैं। प्राणो की रक्षा के वास्ते प्राणप्यारे वच्चे का वियोग सहने के लिए तैयार हो सकते हैं, परन्तु मर्मस्थल को स्पर्श करनेवाला यह प्रस्ताव करना क्या उचित होगा ?

रोहित ने हृदय की बात चुपके-से दबा दी और मस्तिष्क की सलाह मानकर ब्राह्मण के सामने अपना प्रस्ताव रखा—मुझे एक बालक को अपना प्रतिनिधि बनाने की आवश्यकता है। मैं एक सौ गायें देने के लिए तैयार हू। आप दोनो आपस मे सलाह कर लें। इगित से ऋषिदम्पती की स्वीकृति मिल जाने पर रोहित ने जेठे पुत्र शुन पुच्छ को अपने साथ चलने को कहा, सुनते ही अजीगर्त विह्वल होकर बोल उठे, "जेठा पुत्र पिता की समग्र आशाओ का आश्रय होता है, मै इसे बेचने के लिए कदापि तैयार नही हू।" कनिष्ठ पुत्र को हाथ लगाते ही माता चिल्ला उठी, "मै अपनेको बेचने के लिए उद्यत हू, परतु कनिष्ठ पुत्र को बेच नही सकती। छोटा बेटा माता की ममता का मुख्य आधार है, माता की कमनीय कल्पनाओ का केद्र है, कोमल कामनाओ का प्रधान पीठ है। मैं इस छोटे बेटे के लिए सर्वस्व निछावर करने के लिए तैयार हू। इसे छीनकर मेरी गोदी सूनी मत करो।

लाचार होकर रोहित ने मध्यम पुत्र शुन शेप को अपने साथ लिया और उसके बदले मे पूरी एक सौ गायें ऋषि अजीगर्त को सौंप दी।

५

राजकुमार कुशलपूर्वक घर लौट आया। प्रजावर्ग मे आनद छा गया। चारो ओर हर्ष मनाया जाने लगा। रोहित ने अपना मस्तक पिता के चरणो पर रखकर गद्गद् होकर प्रणाम किया। पिता ने पुत्र को उठाकर उसका मस्तक सूघा। हरिश्चन्द्र का शरीर रोग-समुद्र मे धसता जा रहा था, उसे अब डूबते हुए को तिनके के समान, एक बडा सहारा मिल गया। रोगी के

पीले मुखमडल पर आशा की मधुर मुस्कराहट की एक रेखा दौड पडी। मुरझाया चेहरा खिल उठा। पुत्र के लौटने के साथ-साथ पिता के जीवन की आशा भी लौट आई। परतु वलिदान की कल्पना मात्र से उनके शरीर के रोगटे खडे हो गये। रोहित उनका जीवन-सर्वस्व था, उनकी समग्र अभिलाषाओ का केन्द्र था। सुन्दर मुखमडल, जवानी की मस्ती मे झूमनेवाली आखें, गठीला देह, उन्नत ललाट, चौडा वक्ष स्थल, वृषभ के समान उभरा हुआ कन्धा—ऐसे पुत्ररत्न को वरुणदेव के समर्पण की कल्पना ने राजा के हृदय मे विपुल विषाद उत्पन्न कर दिया। वह उस घडी को कोसने लगे जव उन्होने स्वार्थ की वेदी पर अपने प्यारे पुत्र की वलि देने का सकल्प किया था। उनके हृदय मे पुत्रप्रेम तथा धर्मभाव मे तुमुल सग्राम मचने लगा। कर्तव्य-बुद्धि ने राजा को वाध्य किया कि वह अपनी प्रतिज्ञा निभावे। राजा ने कर्तव्य-बुद्धि के सामने सिर झुकाया। उसे यह जानकर वडी प्रसन्नता हुई कि रोहित ने अपना प्रतिनिधि तैयार कर लिया है। वह अपने वदले मे शुन शेप को वलि देने के लिए खरीद कर लाया है। राजा ने वरुणदेव के सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया। क्षत्रिय के स्थान पर ब्राह्मण पशु की वलि की वात सुनकर वरुण नितात प्रसन्न हुए और "ब्राह्मण क्षत्रिय से वढकर होता है" कहकर उक्त प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया। राजा से वोले कि अव देर करने की क्या आवश्यकता है? राजसूय के अभिषेचनीय याग मे इस पशु का आलभन होना चाहिए। हरिश्चन्द्र ने वरुण की स्वीकृति को अपना अहोभाग्य माना और यज्ञ की उचित तैयारी करने मे वे जुट गये।

आज सम्राट् हरिश्चन्द्र की नगरी मे खूब चहल-पहल है। राजसूय के अतर्गत प्रधान अभिषेचनीय याग (एक विशिष्ट यज्ञ) का विधान होनेवाला है। फाल्गुन के शुक्ल प्रतिपद् से राजसूय का आरभ है। आज पूरे एक वर्ष के अनतर चैत्र प्रतिपद् को अभिषेचनीय याग की दीक्षा का मगलमय प्रभात है। राजा ने विधिवत् दीक्षा ग्रहण की। तदनतर तीन दिनो तक 'उपसद्' का अनुष्ठान होता रहा। पाचवा दिन 'सुत्या दिवस' है जब सोमलता को कूटकर रस चुलाकर (अभिषवण कर) आहुति देने का विधान है। पुरुष-पशु के बलिदान की आज ही बारी है। दर्शक मडली के कौतुक तथा उत्सुकता की सीमा नही है। अनुष्ठान की विधिवत् सपत्ति तथा समृद्धि के लिए राजा ने विज्ञ महर्षियो को निमन्त्रित कर रखा है। विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा तथा अयास्य उद्गाता के पद पर प्रतिष्ठित किये गये है। सामने वेदियो पर समिधा से समृद्ध अग्निदेव प्रदीप्त हो रहे थे और उनके धूम आकाश-मडल मे वायु के साथ अठखेलिया करते हुए नाना प्रकार की चित्र-विचित्र आकृतियो का निर्माण कर रहे थे। खदिर का बना यूप दूर से अपनी स्थिति का परिचय दे रहा था। चन्दन तथा पुष्पमाला से सुसज्जित शुन शेप उसीके पास खडे होकर अपने भाग्य की परीक्षा मे व्यस्त था। महर्षि जमदग्नि ने कुश से युक्त प्लक्षवृक्ष की शाखा से मत्रपुर सर शुन.शेप का स्पर्श कर 'उपाकरण' विधि को सपन्न किया, परन्तु पुरुष की कटि, सिर तथा पैरो को रस्सियो से बाधकर यूप मे बाधने का अवसर आते ही उनका हृदय काप उठा। ऋषि का कोमल हृदय इस क्रूर कर्म के सपादन की चिन्तामात्र से पिघल उठा। बाधने की क्षमता

जमदग्नि मे न देखकर महर्षि वसिष्ठ ने अजीगर्त से इस काम के लिए प्रस्ताव किया। पिता ने एक सौ गायो की दक्षिणा लेकर अपने प्रिय पुत्र को रस्सियो से जकडकर यज्ञ के खभे मे वाधा और उसके अगले भाग को यूप मे वाध दिया। दर्शको की मडली मे खलवली मच गई और सवके मुह से तिरस्कार-व्यजक शब्द आप-से-आप निकल पडे। तदनतर अध्वर्यु ने 'आप्री मत्रों' के द्वारा वध्य-पशु का आप्रीरण सस्कार तथा दर्भ की तीन वार प्रदक्षिणा कर पर्यग्निकरण का अनुष्ठान कर दिया परन्तु शुन शेप के आलभन का अवसर आते ही जमदग्नि इस कृत्य से पराड्मुख हो गये। वडी विपत्ति सामने आ खडी हुई। विना आलम्भन के याग का अनुष्ठान ही किस प्रकार संपन्न हो? सव ऋषि लोग हाथ-पर-हाथ रखकर निरुत्साह वन गये, परन्तु अजीगर्त के पुष्ट हृदय ने उपाय निकाला। यदि सौ गायो की भेंट उसे दी जाय, तो वह अपने ही हाथो अपने पुत्र का हिंसन करने के लिए तैयार था।

शुन शेप के हृदय मे यह विश्वास अवतक दृढमूल था कि पर्यग्निकरण सस्कार के अनतर वह यूप से खोल दिया जायगा, क्योकि पुरुष याग के अवसर पर यही प्राचीन पद्धति थी। परतु जव उसने पिता के हाथ मे चमकती हुई तलवार को लपलपाते देखा, तव उसे निश्चय हो गया कि इस याग मे ऋत्विग् लोग अमानुष पशु की भाति उसे वलि देने से विरत न होंगे। हाथ मे तलवार की तक्ष्ण धार पर दृष्टि डालते हुए अजीगर्त को दर्शक मडली ने देखा, शुन शेप ने भी। लोगो के आश्चर्य की सीमा न रही! इस अद्भुत दृश्य के अवसर पर दर्शको को अपनी आखो पर विश्वास न होता था। भला पिता धन के लोभ मे

कभी अपने ही पुत्र के गले पर छुरी या तलवार चलाने के लिए तैयार हो सकता है । उस पिता का हृदय किस वस्तु का बना हुआ है जो अपने ही हृदय के टुकडे को इस प्रकार काचन के मोह मे पडकर अपने ही हाथ से जीवन के घाट उतारने के लिए उद्यत है । शुन शेप की मानसिक व्यथा का चित्र किन रगो मे उतारा जाय ? उसे उन दिनो की मीठी याद आने लगी जब अजीगर्त ने अपनी गोदी मे बिठलाकर उसका लाड-प्यार किया था, स्वय सूखे चने चबाकर भी उसे मीठी रोटी खिलाई थी, तनिक बीमार होने पर सेज के पास बैठ पूरी रात चिन्ता तथा वेदना के साथ बिताई थी । प्राचीन जीवन की घटनाए चित्रपट के समान एक के बाद एक आती, क्षणभर टिककर अपनी स्मृति जगाकर अतीत की गोद मे सो जाती थी । हाय री धन की माया ! तू सज्जन को भी किस कुमार्ग मे नही ले जाती है ? साधुजन को भी दुर्जन बना देती है। काचन ! जगत् पर तुम्हारा ही साम्राज्य है, तुम्हारे प्रभाव को क्षण भर के लिए भी दूर करने की क्षमता किस व्यक्ति मे है ? तुम्हारी चमक किस गुणी की आंखो मे चकाचौंध पैदा नही करती ? बेचारा अजीगर्त आज तुम्हारे ही कारण कलक की कालिमा अपने चेहरे पर पोतकर अपनेको सभ्य समाज की लाछना तथा भर्त्सना का पात्र बना रहा है !

ससार के किसी व्यक्ति से सहायता पाने की दुराशा को दूरकर शुन शेप ने ऋत्विज्जनो की सलाह से परमात्मा की उन विभूतियो से प्रार्थना करना आरभ किया, जिनके सचालन तथा सरक्षण मे यह विश्व अपनी सत्ता तथा स्थिति बनाये हुए है । शुन शेप ने प्रजापति, अग्नि, विश्वे देव, इद्र, अश्विन्, उपा तथा

वरुण की स्तुति करना आरभ किया। हृदय की गाढभक्ति मत्रो का रूप धारणकर वैखरी रूप मे अभिव्यक्त होने लगी। वरुण देव की मनोरम स्तुति से सभा-मडप गूज उठा :

हे सर्वज्ञ वरुण, आप अतर्यामी हैं, आप अपनी सर्वत्र व्यापक आलोचना शक्ति के सहारे प्राणियो के हृदय की बातें स्वय जान लेते है। हे देदीप्यमान वरुण, मैं आपकी प्रजा ठहरा, आपके जिन नियमो को मैंने दिन प्रति-दिन भग किया है, उनके लिए मुझे न तो अनादर करनेवाले शत्रु के प्राणघातक शस्त्रो का पात्र बनाइये और न क्रोधी वैरी के क्रोध का भाजन कीजिये। आप इस विश्व के सम्राट् ठहरे। जिस समय सोने की बनी द्रापि (कवच) पहनकर आप अपने प्रासाद मे बैठते है, उस समय आपके दूत चारो ओर से आपको घेरकर बैठते है। आपसे मेरी यही विनती है कि ऊपरी पाश को आप ऊपर से निकाल दीजिये, कटि को बाँधनेवाले मध्यम पाश को आप खोलकर शिथिल कर दीजिये और पैर को बाधनेवाले निचले पाशो को नीचे से निकालकर दूर कीजिये। मेरे जीवन की आशा इसीपर अवलबित है।

भक्त की प्रार्थना कभी व्यर्थ नही होती। दर्शको ने अचरज भरी आखो से देखा कि क्षणभर मे शुन शेप के शरीर को बाधनेवाली रस्सिया टूक-टूक होकर अलग हो गई। वरुण ने अपनी बलि स्वीकृत कर ली। शुन.शेप कारामुक्त पुरुप की भाति अपनी बेड़ियो से मुक्त हो गया। आनद तथा कौतुक से पूर्ण दर्शकमडली का जयघोप सभामंडप को चीरकर आकाश को गुजारित करने लगा।

सम्राट् हरिश्चद्र उदर-व्याधि से एक क्षण मे मुक्त हो गये।

ऋत्विग् लोगो के हृदय मे देवता की स्तुति का सद्य फल देखकर वडी प्रसन्नता हुई और उन्होने वरुण के द्वारा अनुगृहीत शुन शेप को ही इस अभिषेचनीय याग की सस्था (समाप्ति) के लिए चुना। शुन शेप ने 'अञ्ज सव' नामक सोमयाग का सम्यक् विधान किया। प्रथमत सोम को दो प्रस्तर खडो से कूटकर उसका अभिषव-रस निकाला गया। पीछे उसे द्रोणकलश मे रखकर ऊर्णा के वने 'पवित्र' के द्वारा जाना गया। तव विशिष्ट मत्रो के द्वारा शुन शेप ने प्रज्वलित अग्नि मे आहुति दी। अग्नि धक्-धक्कर जलने लगा। यज्ञ की मगलमय समाप्ति हो गई।

६

स्नेही पुरुषो के दुर्व्यवहार का धक्का वडा गहरा होता है। जिनके सद्व्यवहार पर हमारा पूर्ण विश्वास रहता है वे ही यदि उस रास्ते को छोडकर कुमार्ग पर पैर रखते है और स्नेह के स्थान पर द्वेष को आश्रय देते है, तो हमारा भावुक हृदय उनसे हटकर ऐसे स्थान की खोज मे घूमता-फिरता है जहा उसे स्नेह का तनिक भी आभास मिलता है। शुन शेप की दशा ठीक उस पुरुष के समान थी जो पेशल रत्न के ग्रहण करने की भावना से हाथ वढाता है, परतु हाथ मे जलता हुआ अगारा आ जाता है। जिसे वह रेशम की डोरी समझे हुए है वही विषैले सांप के रूप मे डसने के लिए फूत्कार छोडता है। पुत्र के लिए पिता से वढकर कोई सहायक नही होता। परतु वही यदि लडके के खून का प्यासा वन जाता है तो पुत्र किसकी सहायता की आशा करे?

अजीगर्त के व्यवहार से शुन शेप के हृदय को गहरी ठेस लगी। वह किसी सहायक की खोज मे ही था कि उसकी दृष्टि

महर्षि विश्वामित्र पर पडी। उनकी करुणाभरी मूर्ति देखकर उसका हृदय पसीज उठा। वह उनकी गोद मे जा बैठा। परतु अजीगर्त को यह बात बुरी लगी। वह अपने पुत्र को सबोधन कर कहने लगा, "तुम गोत्र से आगिरस हो, अजीगर्त के पुत्र हो, स्वय विद्वान् मत्रद्रष्टा ऋषि हो। अपने पैतामह ततु को उच्छिन्न मत करो। क्या मेरे रहते तुम्हे विश्वामित्र को अपना पिता वरण करना उचित प्रतीत होता है?"

शुन शेप ने अपने पिता के मीठे वचन सुने। उसके सामने उनके मीठे वचन तथा विषम आचरण का विरोध नितात प्रत्यक्ष था। वह झल्लाकर बोल उठा, "जो नीच कर्म कभी शूद्रो मे भी नही देखा जाता वही कर्म मेरे वध के लिए खड्ग-हस्त आपमें दीख पडता है। आपको अपने पुत्र से बढकर तीनसौ गायें अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होती हैं।

"अनुताप से पाप की निष्कृति की जाती है। मैं स्वय अपने आचरण के कारण सतप्त हो रहा हू। ये गायें तुम्हारी है। तुम ही इन्हे ग्रहण करो।" अजीगर्त ने पश्चात्ताप के स्वर मे कहा।

"परतु घोरतम पाप का प्रायश्चित्त कभी नही होता। एक बार पाप के पक मे अपनेको फसानेवाला व्यक्ति अन्य पापो के आचरण से विरत नही हो सकता। साधारण व्यक्तियो की अनेक भूलें क्षतव्य हैं, परतु वेद-शास्त्र-सपन्न सदाचारी की एक बार की भूल भी महान् अपराध का उद्गम है। ससार जानता है कि पुत्र के लिए यदि किसी व्यक्ति के हृदय मे थोडी-सी भी सहानुभूति है, हृदय का एक भी कोना दया से आर्द्र है, तो वह पिता ही है। परतु उसी पिता का इतना जघन्य कार्य! धन के लोभ से अपने ही निर्मम हाथो से दयनीय

पुत्र के वध का उद्योग कभी क्षतव्य नही हो सकता ।

महर्षि विश्वामित्र ने पिता-पुत्र के इस कथनोपकथन को यही समाप्त कर देने के विचार से कुछ उत्तेजित होकर अजीगर्त को कर्कश शब्दो मे उपालम्भ करना आरम्भ किया, "सचमुच इस विकट पाप का निराकरण प्रायश्चित्त से कभी नही हो सकता, तुम्हारे कोमल हृदय का पता ऋत्विज्जनो को तभी लग गया जब तुम शुन शेप को भरे समाज मे मार डालने के लिए पत्थर पर तलवार पैनी कर रहे थे ! पिता का इतना दयाविहीन हृदय ! धन की इतनी अधिक लोलुपता ! सामाजिक बन्धन का इतना अवहेलनासूचक अट्टहास ! आज से शुन शेप ने मेरे पुत्रत्व को प्राप्त किया है । अपनी लोलुप दृष्टि इससे हटा लो । इसे पाने को कामना को हृदय से दूर निकाल डालो ।"

अजीगर्त का चेहरा मुर्झा गया । उसका उन्नत मस्तक नीचे झुक गया । लोभी पिता ने धन की वेदी पर अपने प्यारे पुत्र का बलिदान कर दिया । पिता-पुत्र का वियोग हमेशा के लिए हो गया ।

: ५ :

अन्न की महिमा

१

मेरा नाम उषस्ति है। मेरे पूज्य पितृदेव का नाम 'चक्र' था। इसलिए सब लोग मुझे उषस्ति चाक्रायरण के नाम से पुकारते हैं। मैं अपने पिता की एकमात्र सन्तति हू। पिताजी वृद्धावस्था मे अपनी गोदी मे बैठाकर मुझे मेरे जन्म की कहानी सुनाया करते थे। उन्होने ऋषि-ऋरण को अध्यापन के द्वारा और देव-ऋरण को यजन के द्वारा चुका दिया था, परतु पितृ-ऋरण से परिशोध का साधन न पाकर वे नितान्त खिन्न थे। बडी कठिन साधना की। वे मेरे जन्म को भगवान् की महती अनु-कम्पा का परिपक्व फल बतलाते थे। मेरे आते ही उनकी गृहस्थी खूब जम गई। घर मे आनद का दीपक जल उठा, सुख-सपत्ति ने उस घर को अपना आवास बनाया। वे बडे प्रेम से मुझे वेद के मन्त्रो की शिक्षा देने लगे। मैंने बडे मनोयोग से सहिता का अध्ययन किया। सामगायन मे मैंने बडी निपुणता प्राप्त की। मेरा कण्ठस्वर स्वभाव से ही मधुर था, तिसपर उसे अधिक मधुर बनाने के लिए मैंने खूब परिश्रम किया। जब मेरे मीठे कण्ठ से सामगायन की स्वर-लहरी आश्रम मे हिलोरे लेने लगती, तब श्रोताओ के हृदय मे आनन्द का उत्साह उमड पडता, कानो मे मधु की धारा बहने लगती। मेरे इस कौशल तथा प्रतिभा को देखकर मेरे माता-पिता का मन मोर के समान हर्ष से नाच

उठता और आसपास के ऋषिजनो का हृदय कौतुक से विस्मित हो जाता। मैंने ब्राह्मण-ग्रथो का गाढ अनुशीलन कर कर्मकाण्ड मे खूब निपुणता प्राप्त की। मैंने विद्या की खूब आराधना की। फलत मेरे हृदय मे प्रबोध का उदय हुआ, विनय से तथा श्रद्धा से मेरे मन मे गर्व का तनिक भी आभास न था। उपनिषद् के रहस्य मेरे साधना से विशुद्ध हृदय मे उसी प्रकार चमकते जिस प्रकार भूतल पर अधकार को दूर करनेवाले चन्द्रमा की किरणे। पिताजी ने आटिकी नाम्नी ब्राह्मण कन्या से मेरा विवाह कर दिया। मैंने अपनी पाठशाला स्वतन्त्र रूप से चलाई। मेरी कीर्ति सुनकर देश-देशान्तर के छात्र मेरे पास आने लगे। मेरा निवास 'कुरुदेश' मे था, परतु मेरा यश समस्त सप्तसिन्धव मे फैल गया। तेजस्वी अध्यापक बनकर मैं अपनेको धन्य मानने लगा।

कुरुदेश की समृद्धि शब्दो मे वर्णन नही की जा सकती। देश क्या था ? सुख-समृद्धि का विशाल आगार था, वैभव का मनोरम निकेतन था, शांति का विपुल भाण्डार था। राजा प्रजा का अनुरजन किया करता था और प्रजावर्ग अपने राजा की तथा उनकी धार्मिकता की प्रशसा करते तनिक न अघाता था। देशभर मे छोटे-बडे गाव दूर-दूर तक फैले थे। हम आर्यों का समाज कृषीवल समाज था, हमारी जीविका का प्रधान साधन कृषिकर्म और पशुपालन था। गोसेवा आर्यों का मुख्य धर्म था। सवेरा होते ही गाये गोशाला से चरागाह मे चरने के लिए गोपाल की सरक्षकता मे भेज दी जाती थी, जहा दोपहर से कुछ पहले ही उनका दूध दुहा जाता था, जिसे 'सगव दोह' कहा जाता था। सायकाल वे घर लौटती। उस समय अपने दुधमुहे बछडो

के लिए गायो का रभाना इतना श्रवरण-सुखद प्रतीत होता जितना इन्द्र के बुलाने के लिए ऋषियो के मधुर मन्त्रो का गायन। वैदिक गृहपति की दुहिता अपने कोमल हाथो से गृहस्थी के लिए दूध दूहती थी। तब घरघो की आवाज से वह शाला गूज उठती थी। कृषिकर्म से इतना अधिक अनाज होता कि भोजन के बाद भी वह बच जाता और बडे पात्रो मे भरकर रखा जाता। नाना प्रकार के शिल्प प्रचलित थे। रूई की पैदावार खूब होती थी, जिससे रग-बिरगे बेल-बूटेदार नयनाभिराम वस्त्र तैयार किये जाते थे। बुनने का काम अधिकतर स्त्रिया किया करती थीं। प्रेममयी माताए अपने ही हाथो से बुने हुए कपडो को अपने पुत्रो को पहनाकर अघाती नही थी। रेशम तथा ऊन के बने कपडो का पहनना आर्यों के लिए साधारण बात थी। परुष्णी तथा सिधु नद का प्रदेश ऊन की पैदावार तथा ऊनी शिल्पियो के लिए सर्वत्र विख्यात था। गाधार की रोयेदार भेडो का ऊन बडा ही पुष्ट, सुदर तथा मुलायम होता था। सप्तसिंधव मे इसकी खूब प्रसिद्धि थी। दीक्षा के अवसर पर यजमान को तार्प्य वस्त्र (रेशमी कपडा) को पहनना नितात आवश्यक था। जब आर्य लोग केसरिया रग मे रगे रेशमी वस्त्र (कौसुम्भ परिधान) को पहनकर उत्साव-समाज में जाते थे, तब वह दृश्य दर्शको के नेत्रो के लिए एक नये मनोरजन की सृष्टि करता था। कमनीय-कलेवरा युवतिया सुनहले तार के बने जरी के कामवाली रगीन साड़ियाँ पहनकर जब बाहर निकलती, तब जान पडता पुराणी युवति उषाए अपनी चिर नवीन प्रभा से लोगो के नेत्रो को चकाचौध कर रही हो।

२

प्रकृति नटी को पट परिवर्तन करते देर नही लगती। आनद मे अपनेको भूलनेवाले प्राणी को इसकी सुध तनिक भी नही रहती, उधर उस मायापति की अलौकिक माया उसके निमित्त नाना प्रकार की विपदाओ का जाल बुना करती है। हमारे देश की दशा अकस्मात् बदल गई। सामूहिक विपत्ति टिड्डियो का रूप धरकर कुरुदेश पर फट पडी। इन सहारकारी जन्तुओ का वडा भारी दल न जाने किस देश से आ पहुचा और हमारे देश के उन लहराते हुए खेतों को सदा के लिए चर डाला। हरियाली का कही नाम-निशान न था। फसल देखते-देखते मारी गई। हरे घास का एक छोटा पत्ता भी हमारे नेत्रो को सरस बनाने के लिए कही नही दीख पडता था। कुरुदेश की प्रजा अन्न के करण बटोरने के लिए, धधकती हुई उदर की ज्वाला को शात करने के लिए, स्वदेश को छोडकर परदेश की धूल फाकने लगी, घर से नाता तोडकर अपने सगे-सबधियो से वह सदा के लिए विदाई लेकर इधर-से-उधर मारी-मारी फिरती और अपने भाग्य को, अपने अनजाने प्राचीन कुकर्म को, कोसती। देखते-देखते कुरुदेश में आनद का दीपक बुझ गया, पूरे देश मे दरिद्रता अपना विराट् अट्टहास करती विचरण करती दीख पडने लगी।

ऐसी विषम परिस्थिति मे अपने प्राणो को बचाने के लिए मैने अपना प्यारा गांव छोड दिया। उस अवसर को याद कर आज भी मेरे रोगटे खडे हो जाते है, जब मैंने अपनी बाल-लीलाओ के साक्षी उस गाव से अपनी विदाई ली थी। अपनी धर्मपत्नी के साथ मैंने जब अपने घर के ऊपर अतिम दृष्टि डाली,

तब हमारे नेत्रो मे विषाद तथा विस्मय के आसू झलकने लगे-विषाद था अपने जीवन के इस विषम दु खमय काड के ऊपर और विस्मय था समग्र देश के ऊपर आनेवाली विपदा के अचानक आक्रमण पर तथा उस जगत्सूत्रधार के इस नवीनतम पट परिवर्तन पर। हृदय हमारा बैठ गया। मेरा मन खिन्न हो गया। अपनी सगिनी के साथ मैं इभ्यग्राम (महावतो के एक गाव मे) पहुचा जिसकी दशा हमारे गाव से कुछ अच्छी थी। मैंने इधर-उधर दृष्टि डालकर देखा कि एक महावत उडद खा रहा था। मुझे भोजन किये अनेक दिन हो गये थे। कुछ दिनो तक तो मै अपनी उदर की ज्वाला सहने का उद्योग करता रहा, परतु कबतक सहता? हताश होकर उदर-हुताशन को यथा कथञ्चित् शात करने का उपाय सोचने लगा। भूख मिटाने का प्रयत्न करने लगा।

अग्नि की ज्वाला भयकर होती है, परतु उदराग्नि की ज्वाला कितनी विषम, कितनी भयानक होती है, इसका अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकता है। यदि आग दूर पर लगी हो, तो उसके बचाव का उपाय भी सोचा जाय, परतु जब अपने ही शरीर के भीतर वह लगी हो, तो अपनेको कैसे बचाया जाय! मैंने गिडगिडाकर उस महावत से कहा, "भाई, मै तुम्हारा ही एक सहवासी प्राणी हू। मुझे भी थोडा-सा उडद दे दो जिससे मैं अपनी क्षुधा को शात करू।"

"परतु मेरे पास तो इतने ही उडद है। थोड़ा मै खा चुका हू और बाकी मेरे जूठे है, जिन्हे आप जैसे विद्वान् को देते मे मर्यादा के भग होने के भावी भय से कांप रहा हू। मै अपने हाथो विद्वान् की अवहेलना न होने दूगा।" महावत ने विनयभरे शब्दो मे कहा।

"डरो मत, बाकी बचे हुए उडदो को मुझे दे डालो। जानते नही हो यही आपद्-धर्म है। शरीर ही धर्म का प्रथम साधन है। उसे बचा लेना प्रत्येक प्राणी का प्रधान कर्तव्य है। ऐसी सामूहिक आपत्ति के समय मे जब दाने के लाले पडे है, अपना भी वीराना बना हुआ है, तब इन प्रिय प्राणो की जिस किसी उपाय से रक्षा करना प्रत्येक प्राणी का पवित्र कर्तव्य है। शास्त्र के उपदेष्टा ऋषि लोग भी मानवी दुर्बलताओ तथा विपदाओ से भली-भाति परिचित थे। अपने सहानुभूतिपूर्ण हृदय से उन्होने हमारे कल्याण के लिए सुख मे अथवा दुःख मे सुदर उपाय बतला दिये हैं। घोर विपत्ति के समय केवल प्राण-धारण के निमित्त जूठे अन्न का खाना कथमपि धर्म-विरुद्ध नही है।" अधिकार-भरी वाणी मे मने महावत को समझाया।

मेरी यह व्याख्या सुनकर महावत का मन निश्चित हुआ और उसने बडे आग्रह से उडद के बचे भाग को मेरे सामने रख दिया। क्षुधा के कारण मेरे पेट मे भयानक ज्वाला तीव्र गति से जल रही थी। इन्ही जूठे उडदो को मैंने खाया। खाते ही एक विचित्र तृप्ति का अनुभव मुझे हुआ। जान पडा मेरे प्रत्येक निःसहाय और अलस अग मे किसीने जीवनी शक्ति फूक दी है। माथे का चक्कर आना कम हुआ। चित्त आश्वस्त हुआ। पर मुझे आश्चर्य हुआ जब महावत ने अपने जूठे जल को मेरे पीने के लिए सामने रखा। मैंने कहा, "भाई, मैं यह जल नही पी सकता। यह जूठा है।"

महावत ने कहा, "विद्वन्, आपके वचन मुझे एक विषम पहेली के समान प्रतीत होते है। अभी तो मेरे जूठे उडदो के खाने मे आपने किसी प्रकार की आनाकानी नही की और अब मेरे जूठे

जल पीने मे इतनी चौकसी दिखला रहे हैं।

मैंने उत्तर दिया, "हा, दोनो मे महान् अतर है। जरा विचारो तो सही। केवल प्राण-रक्षा के लिए ही निषिद्ध अन्न का ग्रहण अग्राह्य नही है। विना उडद के खाये मैं अपने प्राणो की रक्षा नही कर सकता था। मैं जीवन के उस सीमांत प्रदेश मे घूम रहा था जो मरण के अत्यत सन्निकट था। उडदो के भोजन ने मुझे जिलाया। अत आपद्धर्म समझकर ही मैंने उच्छिष्ट कल्माषो को खाया है, परतु इद्र की कृपा से जल की कमी देश मे नही है। मैं स्वच्छ शुद्ध जल अन्यत्र पा सकता हू। अत उच्छिष्ट जल पीना मेरा स्वेच्छाचार समझा जायगा। इस कुकृत्य को मैं कर नही सकता।"

आपद्धर्म की इस विशद व्याख्या को सुनकर महावत का चित्त नितात प्रसन्न हुआ।

मैंने अपनी धर्मपत्नी की ओर दृष्टि डाली। छाया के समान वह पतिव्रता मेरा अनुसरण करती थी, दु खो को झेलती, परतु किसी प्रकार का उपालभ अपने मुख पर नही लाती थी। मैंने कहा, "कल्याणिनि, इन उडदो को खाकर अपनी भूख बुझा ले।" परतु उसे पहले ही कही से अन्न मिल चुका था। उसने भोजन नही किया, किसी अगले दिन की जरूरत पूरा करने के लिए उसने उन वचे हुए उडदो को अपने आचल में वाध लिया।

रात वीती। सवेरा हुआ। वायु किसी दरिद्र की सास के समान ठडी वहने लगी। मुझे छूती, तो जान पडता कि शरीर पर मनो वर्फ की राशि उडेलती जाती हो। उठकर देखा—सविता प्राची-क्षितिज पर उदय ले रहा था, पर उसमे तेज न

था। वह तो किसी आर्त के मुखमडल के समान नितात प्रभा-हीन प्रतीत हो रहा था। प्रकृति का मुख उदासी से ढका हुआ था। न कही प्रसन्नता खिल रही थी और न कही हर्ष विक-सित हो रहा था। चारो ओर वीहड सुनसान! दरिद्रता का भयानक नर्तन! श्मशान का प्रलयकारी नग्न चित्र! सोचने लगा—महाप्रलय की वह भयकरी वेला क्या सचमुच आज ही आ गई है? भगवान् भूतनाथ विश्व का सहार कर विकट अट्टहास करते हुए क्या इसी प्रकार मानवो की दुर्बलता और दयनीयता पर हँसते होगे?

मैं इसी भावप्रवाह मे वहा आ रहा था। सहसा धारा रुक गई। भूख ने मुझे बेचैन कर डाला। मैंने अपनी सहधर्मिणी से कहा, "यदि मैं अपने पोषण का आज उपाय कर पाऊ, तो मैं अपने परिवार के भरण का उपाय कर सकूगा और भविष्य की चिता से भी मुक्त हो जाऊगा। सुना है कि इस 'इभ्य ग्राम' के पास ही कुरुनरेश प्रजा के कल्याण के लिए यज्ञ कर रहे है। उस यज्ञ मे मैं जाकर ऋत्विज् कर्म का भलीभाति निर्वाह कर सकता हू। तव राजा की दक्षिणा मुझे अवश्य निश्चित वना देगी। आटवी ने कल के वचे हुए उड़दो को निकालकर मेरे भोजन के लिए दिया। खाते ही अलसता भाग खडी हुई। पूरी चेतनता से मैं यज्ञ मे भाग लेने की तैयारी करने लगा।

उच्छिष्ट अन्न ने भी प्राणी के भीतर चेतनता का सचार कर दिया।

३

भौतिक उपायो से विपत्ति के न टलने पर आधिदैविक उपायो का आश्रय हर हालत मे श्रेयस्कर होता है। विपत्ति

छोटी न थी, पूरे कुरुप्रदेश पर यह अकाल वज्रपात! विपत् के पहाड का अकस्मात् टूट पडना! भौतिक उपाय कथमपि सफल न हुए। कुरुराज ने विचारा—आधिदैविक उपायो का सहारा अवश्य लेना चाहिए। 'राजा कालस्य कारणम्।' इस महती विपत्ति का कारण मेरे ही किसी अज्ञात पापकर्म के भीतर छिपा जान पडता है। मेघराज को सतुष्ट कर वृष्टि की अभिलाषा से राजा ने विराट यज्ञ का समारोह उपस्थित किया। वेदी बनाई गई। श्रौत अग्नि की विधिवत् स्थापना की गई। बडे धूमधाम से यज्ञ होने लगा। पर्जन्यदेव की स्तुति वायुमडल को चीरती हुई आकाश मे ऊपर उठने लगी। होमधूम यज्ञ-वेदी से निकलकर आकाश मे वायुमडल के साथ अठखेलियां करने लगा। पर्जन्य की स्तुति मे ऋत्विज्जनो ने मजुल कठ से मत्र कहना आरभ किया

हे मरुत् लोग, आकाश से हमे वृष्टि दीजिये। आशुगामी जल-वर्षा की धाराओ को चारो ओर फैलाइये। आकाश मे आप लोग खूब गर्जन करें। जल बरसाते हुए आप लोग हमारी ओर आवें। आप हमारे प्राणदाता पिता है।

यज्ञ का मंडप उल्लास से भर गया और श्रोताओ को विश्वास हो चला कि इंद्रराज की अनुकपा से अकाल के दूर होते देर न लगेगी। मैं भी यज्ञ मे उपस्थित होकर कर्मकाड का निरीक्षण करने लगा। मैं वेद का निष्णात पडित था ही। मेरी सूक्ष्म दृष्टि मे अनेक स्थानो पर त्रुटि जान पडी। यदि मैं चुप रह जाता, तो महान् अनर्थ की सभावना थी। यज्ञ का विधिवत् सपादन एक कठिन, दु साध्य कार्य है। मत्रो के उच्चारण करते समय एक साधारण स्वर का परिवर्तन घोर दुष्फल का कारण हो सकता

है। वृत्र ने अपने कल्याण के लिए तथा इंद्र के मारने के लिए बडे समारोह से यज्ञ किया था, परतु स्वर के अपराध के कारण यज्ञ का फल एकदम उलटा हुआ—इंद्र के हाथो वृत्र का महान् पराभव हुआ। स्वरापराध के समान अर्थहीनता भी अभिलषित फल की उत्पत्ति मे बाधा पहुचाती है। मैंने देखा कुछ ऋत्विज्जन स्वय उन देवताओ के स्वरूप से अनभिज्ञ थे, जिनकी वे स्तुति कर रहे थे।

आस्ताव (स्तुति-स्थान) मे खडे होकर मैंने प्रस्तोता (देवता की स्तुत करनेवाला ऋत्विज्) से कहा, "हे प्रस्तोता, क्या आप उस देवता के स्वरूप को जानते हैं जिसकी स्तुति मे आप साम-गायन कर रहे हैं। स्मरण रखिये, यदि उस अधिष्ठान देवता को बिना जाने आप प्रस्ताव करेंगे, तो आपका मस्तक छिन्न होकर भूतल पर लोटने लगेगा।" उद्गाता से भी मैंने इसी प्रकार प्रश्न किया और अनजाने उद्गीथ (साम) गाने पर मस्तक के गिर पडने की बात कही। प्रतिहर्ता से भी मेरा प्रश्न इसी प्रकार था, "हे प्रतिहर्ता, क्या तुम देवता को जानते हो, जो इस प्रतिहार से सम्बद्ध है। बिना जाने यज्ञ करने से जनता के हित की ही हानि न होगी, प्रत्युत आपका ही सिर छिन्न-भिन्न होकर धराशायी बन जायगा।"

मेरे प्रश्नो के सुनते ही ऋत्विज्जन अवाक् हो गये। उपस्थित जनमडली ने आश्चर्य से देखा कि यज्ञ-मडप मे स्तब्धता छा गई है। सब लोग एकदम चुप हो गये है।

४

यजमान ने देखा अनर्थ होनेवाला है। यज्ञ के अकस्मात् बद हो जाने से उसकी अभिलाषा सफल न हो सकेगी। आगे

बढकर उसने आगन्तुक का परिचय पूछा, "भगवन् आप कौन हैं ? आपकी यह विद्वत्ता, प्रतिभा-भासुर मुख-मडल देखकर मुझे प्रतीत हो रहा है कि आप कोई महान् ब्रह्मवादी महर्षि हैं।"

मैंने कहा, "मैं उषस्ति चाक्रायण हू। अकाल से पीडित होकर इधर-उधर भटकता हुआ आपके पास आया हू।"

"अहो ! क्या आप ही ब्रह्मवादी उषस्ति चाक्रायण हैं, आपको ऋत्विज् बनाने के लिए मैंने स्थान-स्थान पर अपने आदमी भेजे, परतु इस विषम परिस्थिति मे जब मैंने आपको नही पाया, तब मैंने इन ऋत्विजो को वरण किया। आपके इस स्वय पधारने को मैं यज्ञनारायण की असीम अनुकम्पा समझता हू। इस यज्ञ मे आप ऋत्विज् कर्म का निर्वाह करें जिससे इसकी समाप्ति मगलमय हो।" राजा ने विनयभरे शब्दो मे कहा।

मैंने ऋत्विज् बनने की स्वीकृति दे दी, परतु इस प्रतिज्ञा पर कि न तो ये ऋत्विग् लोग हटाये जाय और न मुझे आदर दिखलाने के लिए अधिक दक्षिणा ही दी जाय। मेरे उदारभाव को देखकर राजा को आश्चर्य हुआ। प्रसन्न-वदन होकर मैंने देवताओ का रहस्य बतलाना आरम्भ किया, "हे प्रस्तोता, आपके प्रस्ताव-कर्म से सम्बद्ध देवता को क्या आप नही जानते ? वह देवता प्राण ही है। समस्त प्राणी प्रलयकाल मे प्राण मे ही लीन होते हैं और सृष्टिकाल मे प्राण से उत्पन्न होते हैं। प्राण साक्षात् परब्रह्म रूप है। प्रस्ताव से सम्बद्ध इस प्राणतत्त्व को पहचानिये, तभी आपकी उपासना पूरी तथा सफल हो सकती है।"

उद्गाता ने पास जाकर बडी नम्रता से पूछा, "भगवन् ! उद्गीथ के साथ सम्बद्ध वह कौन देवता है, जिसके विषय मे

आपने मुझसे प्रश्न किया था।

मैंने तुरन्त उत्तर दिया, "आदित्य। सूर्य के विना रात्रि मे प्राणियो के ऊपर विचित्र व्यामोह पडा रहता है। विश्व अंधकार के गाढ पटल के भीतर अपनेको छिपा लेता है। उद्यम का कही नाम नही रहता। जडता प्राणियो के शरीर और मन पर अपना अधिकार जमा लेती है। प्राची क्षितिज पर आदित्य का सुनहला विम्ब ज्योही चमकने लगता है, जगत् मे जीवनी शक्ति का सचार हो जाता है। आदित्य का उदय विश्व की सृष्टि का एक मनोरम प्रतीक है। सूर्य के आकाश मे उगते ही प्राणी लोग रमणीय स्तुतियो से उनका स्वागत करते हैं। उर्ध्वस्थानीय होने से आदित्य उद्गीथ के साथ हमेशा सम्बद्ध है। इस तत्त्व को विना जाने उद्गीथगान महान् अनर्थकारी सिद्ध होगा।

उद्गाता आनद से खिल उठे।

अब प्रतिहर्ता की बारी आई। उन्होने भी अपने प्रतिहार-कर्म से सम्बद्ध देवता के विषय मे अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

मैंने प्रसन्न मन से उत्तर देना आरम्भ किया, "वह देवता अन्न है। अन्न की महिमा यथार्थ रूप मे शब्दो के द्वारा प्रकट नही की जा सकती। शरीर धारण करने का प्रधान साधन अन्न ही है। अन्न के अभाव मे कुरुदेश की विषमस्थिति से आप कथमपि अपरिचित नही है। अन्न साक्षात् देवस्वरूप है। उसके भोजन करने पर ही हमारे शरीर मे वह विचित्र शक्ति उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य स्वार्थ तथा परमार्थ दोनो का अर्जन भली-भाति कर सकता है। भगवान् का प्रत्येक प्राणी से यही आदेश है कि वह अन्न के उपार्जन से कथमपि विमुख न हो। अन्न का

अर्जन एक नितात पवित्र कार्य है। अन्न ग्रहण करते समय यह भावना करनी चाहिए कि मैं एक दैवी शक्ति से अपनेको अनुप्राणित कर रहा हू। प्रतिहार से सम्बद्ध देवता यही अन्न है। इस तत्त्व के जानने पर ही आपका कार्य सफल हो सकता है।"

ऋत्विजो ने महर्षि उषस्ति की अध्यक्षता मे उस यज्ञ को सुदर रूप से सम्पन्न किया। यज्ञ की समाप्ति होते ही पर्जन्यदेव की महती कृपा हुई। मूसलधार वृष्टि ने कुरुदेश को भर दिया। चारो ओर खेतो मे हरियाली लहराने लगी। अन्न की प्रचुरता से प्राणियो के हृदय खिल उठे। अकाल की विपादमयी रेखा कुरुदेश से सदा के लिए मिट गई। तब आर्यजनता ने विस्मत नेत्रो से देखा कि यज्ञ मे दी गई आहुति विश्व के मगल-साधन मे कितनी समर्थ होती है।

भारतवासी अन्नदेवता की उपासना नाना प्रकार से किया करते थे। यदि अकाल पडता था तो मेघो के राजा इन्द्र की पूजा तथा आराधना करते थे, जिससे वे प्रसन्न होकर जल की वर्षा किया करते थे तथा जमीन को उपजाऊ वनाकर वे विशेष अन्न के उपजने मे सहायक वनते थे। अन्न सचमुच देवता है। हमे चाहिए कि अन्न का एक भी कण व्यर्थ न फेके। अन्न को वरवाद कर क्या हम उस देवता के प्रति अन्याय नही करते? आज इस तत्त्व को दृढता के साथ सीखने और समझने की जरूरत है।

: ६ :

बालक का सत्याग्रह

१

सत्याग्रह एक महान् व्रत है। सत्य पर आग्रह रखनेवाला व्यक्ति अपने सामने विघ्न के पहाडो के आ जाने पर भी अपनी प्रतिज्ञा से नही टलता। कुछ लोग उसके आग्रह को दुराग्रह मानकर उसका तिरस्कार भले करे, परतु अत मे विजयश्री उसे वरण करती है, सफलता दासी के समान उसकी अनुगामिनी बनती है। विरोधियो का भी मस्तक उसके सामने झुक जाता है। परतु फल के लिए सतोष और धैर्य रखना आवश्यक होता है। वालक नचिकेता का आग्रह सच्चा था, सत्य के पालन मे उसकी निष्ठा दृढ थी, परंतु उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसका यही आचरण उसके पितृदेव वाजश्रवा के हृदय मे क्रोध के धधकने का कारण बन गया।

उस दिन उस दीर्घकालीन महान् यज्ञ की समाप्ति थी। होमकुड मे जलनेवाले अग्निदेव की ज्वाला आज शात थी। उस धूम के स्तूप का भी आज दर्शन न था जो प्रतिदिन आकाश मे उठकर पवन के साथ सुन्दर खेल करता हुआ दिखलाई पडता था। उस पावन तपोवन के अरुणाभ पल्लवो में धूम से मलिन होने पर भी स्निग्ध शोभा छाई हुई थी। होम का गध चारो ओर फैलकर पावनता का सचार कर रहा था। महर्षि वाज-

श्रवा की आत्मा आज आनद से गद्गद् हो रही थी। आज उनके दीर्घकाल के अध्यवसाय की मगलमय समाप्ति थी। वर्षों की कामना सफल हो रही थी। आज उनके 'विश्वजित्' यज्ञ का अत था। महर्षि की सपत्ति कुछ विशेष न थी, परतु जो कुछ उनके पास था, जिस सामग्री को बूद-बूदकर वर्षों से उन्होंने बटोर रखा था, उसे ऋत्विजो को देते समय उनके नेत्रो मे आनद के आसू झलक रहे थे।

गाय ही यज्ञ की प्रधान दक्षिणा है। यज्ञ मे भाग लेनेवाले ऋत्विजो का सत्कार गोदान के द्वारा निष्पन्न किया जाता है। परतु गायें होनी चाहिए समर्थ, सुन्दर और सबल। दुबली-पतली बूढी गायो का उपयोग दक्षिणा के रूप मे कभी न होना चाहिए, क्योकि ऐसी गायो का दाता यजमान ऐसे लोको मे जाता है जहा न तो प्रकाश नेत्रो को विकसित करता है और न आनद हृदय को। परतु इस सत्य की उपेक्षा कर वाजश्रवा ने अपनी उन दीन-हीन गायो को दक्षिणा के रूप मे दे डाला, जिनकी रक्षा करना उनका कर्तव्य था। उनकी गाये थी एकदम बूढी, बिल्कुल जर्जर। बुढापे के कारण उनमे हड्डियो का केवल एक दुर्बल ढांचा बाकी था, जो दर्शको के हृदय मे सहानुभूति का सोता बहाने मे समर्थ था। उन्होंने पानी का अतिम घूट पी लिया था और दूध का अन्तिम बूद दे डाला था। महर्षि ने सोचा, आखिर ये हैं तो मेरी ही सपत्ति। इन्हे दे डालने का मुझे पूरा अधिकार है। इन्हे ऋत्विजो को देकर मैं इनके रक्षाभार से किसी प्रकार मुक्त हो जाऊं। अपने विचार को कार्यरूप मे परिणत करते समय न तो संकोच ने उन्हे दबाया और न शील ने।

ऋत्विजो को गायो की दक्षिणा देकर उन्होनें छुट्टी ली।

परंतु इन मूक पशुओ की विचित्र दशा थी। जाते समय इन्होने अपने करुण हुकार से उस तपोवन से अतिम विदाई ली और अपने नये घरो के लिए जैसे-तैसे प्रस्थान किया। इस घटना से आश्रम मे सब जगह उदासी छा गई। तपोवन की लताओ ने सूखे पीले पत्तो को गिराकर सहानुभूति के आसू बरसाये। मृगी घास का चरना छोडकर उसी दिशा मे विषाद-भरी दृष्टि से बहुत देर तक देखती रही। मयूरियो ने अपना आनद-नृत्य बद कर दिया।

२

तपोवन सर्वत्र नीरव था। सब लोग हृदय मसोसकर चुपके-चुपके कहते कि महर्षि ने अच्छा नही किया। इन गरीब पशुओ को इस वृद्धावस्था मे अपने सरक्षण से दूर हटाकर उन्होने अच्छा नही किया। परतु किसीको साहस न होता था कि हृदय की बात मुख पर लावे, प्रतिवाद को अभिव्यक्त करने का साहस किसीमे न था। तपस्वी के तपोबल को सब जानते थे। उनके हृदय को कौन दुखावे? और कौन अपनेको उनके शाप का भाजन बनावे? परतु आश्रम की मर्मभरी गूढ वेदना ने ऋषि के बालक पुत्र नचिकेता को प्रकट होने का साधन बनाया। गूढ प्रतिवाद प्रकट रूप मे आया। छिपा हुआ क्लेश अधिक देर तक अपनेको प्रकृति के हृदय मे छिपाये न रख सका। नचिकेता की वाणी मे आखिर बाहर आकर ही शात हुआ।

"पिताजी, आप मुझे किसे देंगे?" नचिकेता ने तीव्र शब्दो मे पिता से पूछा। परतु पिता ने बालकपुत्र के इस प्रश्न पर कान नही दिया। पुत्र ने दूसरी बार उसी प्रश्न को दुहराया, फिर भी उत्तर न मिला। तीसरी बार पूछते ही ऋषि ने कहा, "मैं

तुम्हारे इस प्रश्न को अवसरहीन तथा अनुचित समझता हू। तुम्हारे प्रश्न करने का वास्तव तात्पर्य क्या है? पूछने का यह कौन-सा अवसर है ?"

"मेरा अभिप्राय इन निरीह निरिन्द्रिय दुर्बल पशुओ के दान से है। क्या इतनी वृद्ध गायो को अपने आश्रम से दूर करना उचित था ? इन्हें दान देने से क्या एक कण भी पुण्य मिलेगा ?"

"तुम वच्चे ठहरे, इस विपय से एकदम अवोव। मैंने सर्वस्व-दक्षिण याग का विधिवत् अनुष्ठान किया था। विना दक्षिणा के योग अधूरा ही रह जाता है। प्रतिज्ञा के अनुसार मैंने अपनी समग्र सम्पत्ति ऋत्विज्जनो को दे डाली है। गाये भी तो हमारी सम्पत्ति ठहरी। उन्हे देने से ही मेरा यज्ञ पूरा होगा।"

"हा, ये आपकी सम्पत्ति अवश्य हैं, परतु इस निरीह दशा मे ये रक्षा की पात्र हैं, दान के योग्य नही। प्रस्थान के समय इनकी वह करुण हुकार अव भी मेरे कानो मे गूज रही है।" नचिकेता ने कुछ गरम शब्दो मे पिता से कहा।

"मैंने तो अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है।"

"नही, बिल्कुल नही। यज्ञ मे देवताओ को अपनी सवसे प्यारी, सवसे अधिक सुदर, सवसे अधिक मूल्यवाली वस्तु अर्पण करनी चाहिए। ऋत्विजो को सवल तथा समर्थ गायें देनी चाहिए। मैं आपका प्यारा पुत्र हू। वतलाइये तो सही आप मुझे किसे देंगे ?"

पिता पुत्र के इन विचित्र प्रश्नो को सुनकर एकदम निरुत्तर था।

पुत्र ने दूसरी वार पूछा, "आप मुझे किसे देंगे ?" पिता

एकदम चुप !

जब पुत्र ने तीसरी बार फिर उसी प्रश्न को दुहराया, तो पिता का क्रोध अपनी सीमा को पार कर गया। बालक का इतना हठ ! इतना अधिक दुराग्रह ! अनधिकार विषय मे उसका टाग अडाना पिता के लिए असह्य हो उठा। झल्लाकर तीव्र शब्दो मे वे बोल उठे, "मैं तुम्हे यमराज को दूगा।"

साधारण प्रश्न के उत्तर मे यह अनभ्र वज्रपात ! बिना बादल का गर्जन ! सीधी-सी जिज्ञासा का इतना विषमय उत्तर ! बालक इस विकट उत्तर के लिए तैयार न था। वह था विचारशील। उसने अपने पूर्व-जीवन की घटनाओ पर एक सरसरी दृष्टि डाली, परतु उसे अपने छोटे जीवन मे कही भी त्रुटि न प्रतीत हुई। उसने अपने गुरु और पिता की आज्ञा के मानने मे जाने या अनजाने कभी भूल न की थी। सोचने लगा—बहुत-से शिष्यो मे मैं आगे रहता हू और बहुतो मे मैं मध्यम वृत्ति से रहता हू। अधम वृत्ति से मैं कभी नही रहता। फिर मुझे यमराज के घर भेजने मे पिता का कौन-सा अभिप्राय है ? एक दिन तो मरना निश्चित है ! इस जगत् के प्राणी उस धान के समान हैं जो समय पर पकता, काटा जाता और फिर पनपता है। प्राणी का शरीर धारण करने पर यम से कौन भय ? कभी-न-कभी तो उसके द्वार को खटखटाना ही है। तब आज ही क्यो न चलू ? पिताजी की आज्ञा का भरपूर पालन होगा !

पुत्र ने पिता के अभिशाप को प्रसाद समझा। विधि विडबना के सामने उसने सिर झुकाया और नाना विचारों की शृ खला को अपने हृदय के भीतर छिपाकर वह चल पड़ा

यमराज के द्वार पर अपनी टेक निभाने के लिए।

ऋषि-बालक की तेजस्विता अपनेको प्रकाश मे लाने के लिए मचल हो चली।

३

अहा! क्या यही सजीवनी पुरी है, जहा भगवान् यम अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्राणियों के पुण्य-पाप का विवेचन कर उसे स्वर्ग-लोक मे भेजकर सतत सुख भोगने का अधिकारी बनाते हैं अथवा नरक मे भेजकर दु ख के गाढ अधकार मे उसे डुबाये रहते हैं। यम के उपकारो को हम मानव कभी नही भुला सकते। वे प्रथम मानव हैं, जिन्होने इस भूतल से प्रयाण कर उस परलोक के जानेवाले मार्ग का पता लगाया और मानवो के कल्याण के लिए इस सुगम मार्ग के रहस्य को हमे बतलाया। उनके लोक तक जाने मे एक बडी विचित्र नदी को पार करना पड़ता है। इस 'वैतरणी' के पास ही एक चौडा पुल है, जिसकी रक्षा दो बडे डील-डौलवाले भयानक कुत्ते किया करते हैं। इनमे एक तो काले रग का है और दूसरे का रग बिल्कुल चित-कबरा है। पुण्यात्माओ को इनसे किसी सकार का क्लेश नही पहुचता, परतु पापियो की आत्माए इनके भय से सदा सकुचित बनकर चला करती हैं। एक सुदर वृक्ष के नीचे राजा यम इस कर्मभूमि मे रहकर यज्ञ के द्वारा पुण्य करनेवाले जीवो के साथ आनद-मग्न रहते हैं प्राणियो के कर्मों के देखने की उनकी शक्ति विलक्षण है। वे अध्यात्मज्ञान के पारगामी हैं।

एक झपकी में नचिकेता ने अपनेको यमलोक मे पाया। विशाल प्रासाद देखकर वह चकित हो उठा। उस प्रासाद मे एक हजार दरवाजे थे। काचन के शिखरो के ऊपर रग-बिरंगी

पताकाए महल की शोभा को दुगुनी-चौगुनी बढा रही थी। वाल-ब्रह्मचारी की भव्य मूर्ति देखकर द्वारपालो के आश्चर्य का ठिकाना न था। स्निग्ध श्यामल शरीर, माथे पर कृष्ण जटा-जूट, ललाट पर श्वेतभस्म का मनोरम त्रिपुड, हाथ मे पलाश दड। आगे बढकर उन लोगो ने अभ्यागत को प्रणाम किया। परतु नचिकेता यमराज का अतिथि था, पिता ने उसे यम के ही पास भेजा था, बिना उनसे भेंट किये वह आतिथ्य ग्रहण के लिए उद्यत न हुआ। यमराज वहा उपस्थित न थे, एक-एक करके तीन दिन बीत गये, परतु सत्यनिष्ठ ऋषि-बालक उनकी प्रतीक्षा मे ज्यो-का-त्यो खडा रहा।

चौथे दिन प्राची क्षितिज पर सूर्य-बिब के आगमन के साथ ही यमराज का भी आगमन अपनी नगरी मे हुआ। अपने द्वार पर उस बालक-अतिथि को देखकर वे उतने ही चकित हुए जितना उसकी निर्भीकता से। आज इस बिना बुलाये आनेवाले अतिथि के आगमन मे कौन-सा गूढ रहस्य छिपा हुआ है? किसी अतिथि के स्वागत करने का यह पहला अवसर था। यमपुरी मे अतिथि का आगमन! सयमनीपुरी मे विना वुलाये किसी-का आना सचमुच कौतुक उत्पन्न कर रहा था। दूतो के द्वारा बुलाये जाने पर भी प्राणी अपने भाग को कोसता हुआ भय से सिकुडा हुआ दवे-पाव यमपुरी मे आने का साहस करता है, परतु आज का अनोखा अतिथि ब्रह्मतेज से चमक रहा था और निडर होकर इधर-से-उधर टहल रहा था। महाराज यम के सामने मन्त्रियो ने अपनी विषम स्थिति कह-सुनाई। बालक-अतिथि का यमराज से मिलने तथा उन्हीके हाथो से आतिथ्य ग्रहण करने के आग्रह ने उनकी स्थिति को विषम वनाया था।

यम को अपनी अनुपस्थिति पर बडा खेद हुआ। अतिथि-सत्कार वन्धु-भाव का प्रथम निदर्शन है। मानवमात्र परस्पर भाई-भाई हैं। दूसरे के दु ख से दुखी होना और सुख से सुखी होना उसका सहज स्वभाव है। अतिथि-सेवा मानवो को एक सूत्र मे बाधने की सोने की जजीर है। भारतीय सस्कृति का तो यह प्रथम महामत्र ठहरा। अतिथि किसीके द्वार पर किस आशा से, किस अभिलाषा को अपने हृदय मे बटोरकर आता है, परतु यदि हम उसका सत्कार करने मे चूकते है, तो हम मानवता की सच्ची परीक्षा मे चूक जाते है। वालक-अतिथि की इस अवहेलना ने यमराज को अस्त-व्यस्त वना डाला।

...

"ब्रह्मचारिन्, इस असमय मे आपने इस लोक मे आने का क्लेश क्यो उठाया है?" यमराज ने खेदभरे शब्दो मे नाचिकेता से पूछा।

"प्रभो ! पिता की आज्ञा !"

"आपके इस आज्ञापालन-व्रत से मै अत्यत प्रसन्न हू। आपने अपना टेक खूब निभाया, परतु मैं तो अपने अतिथि-सेवा-व्रत को निभा न सका। मैं स्वय अनुपस्थित था और उपस्थित होकर भी मेरे मत्री आपकी सेवा करने मे चूक गये हैं।"

"भूल करना मानवो के समान देवताओ मे भी सुलभ है। कुछ लोग मनुष्यो पर ही भूल-चूक करने का दोप लगाया करते है, परन्तु असावधानता का राज्य वडा विस्तृत ठहरा। लापरवाही का मैदान वहुत लम्बा ठहरा। वह तो देवलोक को भी अछूता नही छोडता।" नचिकेता ने वडी निर्भीकता के साथ उत्तर दिया। वालक की एक तो इतनी छोटी उम्र, इतना अदम्य

उत्साह, पिता की कठिन आज्ञा के पालन करने मे इतनी दृढता, तिसपर इतनी निर्भीकता। यमराज अत्यत प्रसन्न होकर बोले, "तुमने तीन दिनो तक मेरे आने की प्रतीक्षा की है, तीन दिवसो तक तुम्हारे आतिथ्य मे हमारे पक्ष से अक्षम्य विलम्ब हुआ है। अत कोई भी तीन वर माग लो। मैं अभी उन्हे देने के लिए तैयार हू।"

नचिकेता के हृदय मे इस व्यापार से कौतुक तथा हर्ष दोनो भावो का एक साथ उदय हुआ। कौतुक यमराज के इस प्रस्ताव पर और हर्ष अध्यात्म-विषयक सदेहो के निराकरण के अनुपम अवसर पाने पर। इन भावो को छिपाकर वह मद स्वर मे कहने लगा, "यदि आप सचमुच मुझसे प्रसन्न है, तो कृपया ऐसा वरदान दीजिये जिससे मेरे पूज्य पिता का क्रोध शात हो जाय और यमलोक से लौट आने पर वे मुझसे प्रसन्न हो और मुझे पहचान ले।"

"तथास्तु, दूसरा वर ?" बालक की पितृभक्ति से आह्लादित होकर यमराज ने कहा।

"भगवन्, स्वर्गलोक की महिमा मैंने खूब सुन रखी है। उस लोक मे न तो भय का नाम है और न रोग की चर्चा। न तो बुढापे की कल्पना से लोगो के हृदय काप उठते है और न यमराज के प्रभाव की याद उनके चित्त को कपाती है। भूख-प्यास की वह वेदना जो प्राणिमात्र को बेचैन बनाये रहती है और जिसके प्रभाव से वह भलाई-बुराई का कभी विचार नही करता उस लोक मे किसीको नही सताती। आप उस अग्नि-विद्या को जानते है जिसका अनुष्ठान साधक को इस स्वर्गभूमि पर पहुचा देता है। कृपया इस विद्या को मानवो के कल्याणार्थ बतलाइये।"

यमराज ने बडे प्रेम से इस स्वर्ग के साधनभूत अग्निविद्या को बतलाया। वेदी की रचना तथा उसमे लगनेवाला ईंटो के निर्माण तथा सख्या को भली-भाति समझा दिया। विषय कठिन था, परतु मेधावी नचिकेता के लिए यह नितात सुबोध था। उसने इस विद्या को ठीक-ठीक सुनाकर यमराज को आश्चर्य मे डाल दिया। प्रसन्न होकर देवता ने नचिकेता के नाम पर ही इस अग्नि का भी नाम 'त्रिणाचिकेत' रख दिया।

बालक की ओजस्विता धीरे-धीरे प्रकाश मे आने लगी।

४

मृत्यु मानव-बुद्धि के लिए एक विषम पहेली है। इस भौतिक शरीर से प्राणो के बाहर निकल जाने के बाद क्या कोई ऐसी वस्तु है जो जीती-जागती रहती है ? इस प्रश्न की मीमासा हमारे लिए नितात आवश्यक है। इस लोक के बाद कोई अन्यलोक भी है, जहा मानव नयारूप धारण कर अपने कर्मो का फल भोगता है, अथवा यही शरीर उसके जीवन का अत है ? मनुष्यमात्र के लिए आवश्यक यह समस्या बालक नचिकेता के मस्तिष्क को विशेष पीडा पहुचा रही थी। वह किसी विज्ञ उपदेशक की खोज मे था। यमराज मृत्यु के देवता ठहरे। उनसे बढकर मृत्यु की समस्या को सुलझानेवाला उपयुक्त व्यक्ति दूसरा कौन हो सकता है ? बालक ने अपना तीसरा प्रश्न इसी विषय मे पूछा।

प्रश्न सुनते ही यमराज की मुद्रा बदल गई। इतनी कम उम्र के बालक का इस गहन अध्यात्मविद्या के विषय मे पूछना एक कौतुकजनक व्यापार था। उन्होने नचिकेता को इस विषम समस्या से दूर हटाने के निमित्त नाना प्रकार के प्रलोभन देने

शुरू किये। मर्त्यलोक मे जितनी दुर्लभ वस्तुए हैं, उन्हे स्वीकार कर लो—सुदर अभिराम रमणिया, शतायु सताने, हस्ती तथा हिरण्य से परिपूर्ण विशाल भूमडल, रथ और घोडे, परतु इस रहस्य के जानने का आग्रह मत करो। परतु नचिकेता हिमालय के समान अडिग था। अनुपम वस्तुओ के प्रलोभन ने उसे तनिक भी विचलित नही किया। जिन पदार्थों की स्थिति कल तक भी स्थिर नही है, उन मृगतृष्णा के समान विषयो मे कौन अपने मन को लगावे ? यमराज का आग्रह तनिक भी कम नही हुआ और नचिकेता की दृढता तनिक भी ढीली नही पडी। बालक के तेज को देख यमराज अचरज मे पड गये। इतनी छोटी उम्र मे इतनी दृढता! इतना सत्यानुराग! इतना सत्याग्रह! सत्याग्रही बालक के सामने देवता को भी झुकना पडा। सयमनीपुरी ऋषि-बालक की तेजस्विता देखकर आनद से खिल उठी।

यमराज प्रसन्न होकर कहने लगे, "इस सूक्ष्म धर्म की मीमासा दुरूह है। देवताओं को भी इस विषय मे सदेह बना हुआ है। मृत्यु के अनतर भी रहनेवाला पदार्थ है। उसीका नाम आत्मा है। वह अमृत है, अमर है, शुक्ल है। जिस प्रकार अग्नि एक है, परतु वह जगत् के पदार्थों मे प्रवेश कर नाना रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार सब प्राणियो का अतर्यामी प्रेरक एक ही तत्त्व है, परतु आश्रित रूपो के अनुसार वह नाना प्रतीत होता है। इस नश्वर जगत् के मूल मे वही अनश्वर तत्त्व सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान दृष्टिगत होता है। इस लोक और परलोक मे वह तत्त्व क्रियाशील हो रहा है। जो यहा है, वह वहा है और जो वहा है, सो यहा है। इस ससार के भीतर

अनेकता अवश्य दिखलाई पडती है, परंतु यह ऊपरी है। वस्तुओ के भीतर एकता विराजती है। इसे ही पहचानना चाहिए। जो व्यक्ति इस जगत् में अनेकता के भीतर एकता का अनुभव नहीं करता, वह कभी दु खो से मुक्त नहीं हो सकता।

"मनुष्य को तबतक शाश्वत सुख नही मिल सकता, जबतक वह अतर्यामी पुरुष का साक्षात् अनुभव नही करता। नाना प्रकार के काम, तरह-तरह की वासनाए प्राणी को इधर-उधर भटकाया करती हैं। मनुष्य को उचित है, इन कामो को को दूर हटावे। इस कार्य की सिद्धि का राजमार्ग है, "योग का अभ्यास। जबतक इद्रियो के द्वारा विषयो मे भटकनेवाले चित्त को अपने वश मे न लाया जायगा, तबतक शाश्वत सुख की प्राप्ति की आशा दुराशामात्र है। जब हृदय मे रहनेवाले काम दूर हो जाते हैं, तब मर्त्य अमर बनता है और इसी जीवन मे वह ब्रह्म को पा लेता है। हृदय की गाठ खोलने का यही एक द्वार है। इस अमृत तत्त्व परमात्मा का साक्षात् अनुभव करना। प्राणीमात्र के लिए यही मेरा सदेश है। वे बाहरी चीजो के प्रलोभन मे न पडें। मूल वस्तु के पहचानने का उद्योग करे। इस एकत्व का अनुभव समस्त कलहो, क्लेशो और परितापो को दूर करने की मुख्य दवा है।"

ऋषि-बालक का सत्याग्रह सफल हुआ। यमराज के एकता-सिद्धात के सदेश को उसने जगत् के कोने-कोने मे पहुचा दिया। प्राणियो ने अपने वास्तविक मगल के साधने का उपाय पाया। मनुष्यो के सतप्त हृदय इस उपदेशामृत के पान से तृप्त हो गये।

बालक की तेजस्विता को प्रकट देखकर प्रौढो के नेत्र आश्चर्य से चकाचौंध होगये। सत्याग्रह का फल अवश्यम्भावी होता है। उसके उत्पन्न होने मे देर भले लगे, परतु फल होता जरूर है। सत्य पर आग्रह करने पर ही मनुष्यो को सच्चा सुख, सच्ची स्वतत्रता तथा सच्ची शाति मिल सकती है।

: ७ :

प्रेम की साधना

१

राजर्षि रथवीति दाल्भ्य के नगर की आज सजावट देखने ही योग्य है। राजमार्गों पर चन्दन-जल का छिडकाव हो रहा है। सुगधित सुमनो की महक सर्वत्र सौरभ-भार का विस्तार कर रही है। नगर-निवासियो के घरो मे भी चहल-पहल कम नही है। आज महाराज रथवीति ने एक बडे यज्ञ का आयोजन किया है। इसके निमित्त एक लम्वी-चौडी भूमि साफ-सुथरी बनाई गई है। यज्ञ के लिए विशाल वेदी की रचना की गई है। वेदी के ऊपर शोभन यज्ञमण्डप दर्शको के नेत्रो को हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। मण्डप मे सुदर चौकोने काठ के बने चिकने खभे गाडे गये हैं, जिनके ऊपर लाल, पीले, काले-नीले, रग-बिरगे फूलो की मालाए लटक रही है। वितान (चादनी) से मोती की झालरें झूल रही है। परिष्कृत वेदी पर श्रौत अग्नियो की स्थापना के लिए भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न आकृतिवाले प्रतिष्ठा-स्थान चुनकर रचे गये है। चतुष्कोण वेदी के पूरब की ओर एक चौकोना स्थान तैयार किया गया है, जिसपर देवताओ के होम के लिए आहवनीय अग्नि की स्थापना की गई है। पश्चिम दिशा मे गार्हपत्य अग्नि के निमित्त वृत्ताकार वेदी दीख पड़ती है, जिसमे यजमान-पत्नी के द्वारा होम का अनुष्ठान किया जायगा। दक्षिण ओर अर्धवृत्ता-

कार वेदी दक्षिणाग्नि की प्रतिष्ठा के लिए तैयार है, जिसमे पितृ-गणो की तृप्ति-कामना से हवन किया जायगा। वेदी की रचना पर दृष्टिपात करते ही यजमान की कुशलता तथा आस्तिकता का परिचय दर्शको को भली-भाति मिल जाता है।

रेशमी वस्त्र धारणकर यजमान दम्पत्ति ने दीक्षा ग्रहण की है। ये निमन्त्रित ऋत्विग्गणो की उचित अभ्यर्थना कर रहे हैं तथा उन्हे यथोचित आसनो पर बिठला रहे हैं। इतने मे यज्ञ-मडप मे नीरवता विराजने लगती है, जन-समुदाय का कलरव अकस्मात् शात हो जाता है। मडप के सामने से दो ऋपिवर्य भीतर आते हुए दिखाई पडते हैं। आगे चलनेवाले व्यक्ति की लबी सफेद दाढी उनकी अवस्था का परिचय दे रही है तथा पीछे आनेवाले पुरुष की युवावस्था की सूचना उनका श्मश्रुविहीन मुखमडल दे रहा है। दोनो का चेहरा ब्रह्मतेज से दमदमाता हुआ, सुवर्ण के समान चमचमाता हुआ था। विशाल ललाट के ऊपर शुभ्र त्रिपुड मस्तक के ऊपर पिंगलवर्ण लबी जटाए, एक हाथ मे कमडलु तथा दूसरे मे स्थूल दडयष्टि। मुखमडल से नितात सरल तथा भोलेपन का भाव फूट रहा था। इन दोनो पुरुषो को देखने से यही प्रतीत होता था कि मानवो को अपने दर्शन से पवित्र करने के लिए दिव्य पुरुषो ने अवतार ग्रहण किया है। दूर से ही इन्हे आते देखकर रथवीति अपना आसन. छोडकर खडे हो गये। आगे बढकर इनका अभ्युत्थान किया तथा मडप मे ले आकर इन्हे उचित आसन पर बैठाया। वृद्ध व्यक्ति का नाम था महर्षि अर्चनाना आत्रेय और युवा थे उनके के ज्येष्ठ पुत्र श्यावाश्व आत्रेय।

रथवीति ने महर्षि अर्चनाना को होता के कार्य के लिए निमन्त्रित किया है। राजा के विशेष आग्रह पर महर्षि ने होता का गुरुतर भार स्वीकार किया है। अर्चनाना महर्षि अत्रि के पुत्र हैं तथा अपने समय के एक वडे भारी ब्रह्म-वेत्ता हैं। उनके माहात्म्य का विचार कर ही राजा ने उन्हे अपने यज्ञ मे उपस्थित होकर होता वनने का कार्य सौंपा है। ऋग्वेद के अत्रिमडल (पचम मडल) के अनेक सूक्तो के वे ऋषि है। अन्य निमन्त्रित ऋत्विग् लोग पहले से ही यज्ञमडप मे उप-स्थित थे। अर्चनाना के आने मे थोडा विलव हो गया था। उनके आते ही यज्ञ का विधान प्रारभ हुआ। होता ने ऋचाओ का विधिवत् उच्चारणकर आहवनीय देवता की स्तुति की; अध्वर्यु ने मत्र पढ-पढकर अग्निकुड मे घृत तथा यव की आहुति देना आरभ किया। उद्गाता ने सामो का विधिवत् गायन किया, सामगायन की मधुर स्वरलहरी मडप मे गूजने लगी, श्रोताओ का मनोमयूर इस मधुमय मूर्च्छना-सवलित साम को श्रवण कर आनदातिरेक से नाच उठा। यज्ञीय धूम पवन के साथ अठखेलिया करता हुआ मडप के वाहर आकाश मे विखर उठा। धूम की लबी रेखा स्वर्गारोहण के निमित्त विरचित सोपान-पक्ति के समान दृष्टिगोचर होने लगी। वायु होमगध को चारो ओर विखेरने लगी, जिसे सूघने मात्र से प्राणियो की आत्माओ मे लघुता की अनुभूति होने लगी। यज्ञ के इस मागलिक आरभ का अवलोकन कर दर्शक-मडली अपने को कृतकृत्य समझने लगी।

२

जव महर्षि अर्चनाना ने यज्ञ के समाप्त होने पर इवर-

उधर दृष्टि डाली तब वह यज्ञमडप मे एक विशिष्ट ग्रासन पर ग्रासीन एक युवति पर पडी। उनकी दृष्टि वही ठिठक-सी गई। उसकी वेश-भूषा को देखकर महर्षि को यह समझते देर न लगी कि महाराज रथवीति की यह इकलौती पुत्री मनोरमा है। वह कौसुम्भ क्षोम-परिधान (केसरिया रेशमी साडी) पहने हुए थी जिसके ऊपर सुनहले तारो से जरी का काम किया गया था। नदी के जल पर सूर्य की किरणो के पडने से जिस तरह की चमक दीख पडती है, उसी प्रकार की चमक उस क्षोम वस्त्र मे भी निकल रही थी। शरीर का ऊपरी भाग एक बहुमूल्य जडाऊ चादर से ढका हुग्रा था। भीतर उसने हिरण्यमयी चोली पहन रखी थी। माथे के स्निग्ध चिकने बाल 'ग्रोपश' के रूप मे सवारे गये मनोहर दीखते थे। उसने ग्रपनी रुचि के ग्रनुसार सुनहले ग्राभूषणो को धारण कर रखा था। कानो से लटकने-वाले 'कर्णशोभन' की छटा से मुखमडल गमक रहा था। वक्ष-स्थल को 'रुक्म' ने विभूषित कर रखा था। ग्रीवा की शोभा सुवर्ण के वने 'निष्क' ने द्विगुणित कर दी थी। उस रमणीरूप क निर्माण मे विधाता ने तो ग्रपनी चतुराई लगा ही दी थी, परन्तु मनुष्य ने भी उसे सुसज्जित करने मे ग्रपनी बुद्धिमत्ता वचा न रखी थी। वह रूप प्रकृति ग्रौर कला के सुदर सहयोग से विकसित हो उठा था।

युवति मनोरमा को ग्रर्चनाना ने देखा। देखते ही उनके हृदय ने कहा—क्या ही ग्रच्छा होता यदि यह राजकुमारी मेरी पुत्रवधू वनती। पर उनके मस्तिष्क ने झट उत्तर दिया—यह वात होने की नही है। भला, यड़ ऐश्वर्यशाली सम्राट् ग्रपनी राजकुमारी का विवाह एक ग्रकिंचन तपोधन के पुत्र के साथ

करने को तैयार होगा ? हृदय ने कहा—तो दोष ही क्या है ? राजा के सामने प्रस्ताव रखकर उनकी सम्मति ले ली जाय। महर्षि ने हृदय और मस्तिष्क का वार्तालाप सुना और वे हृदय की बात उपयुक्त समझकर प्रस्ताव करने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

३

"राजन्, मेरा एक प्रस्ताव आपको मानना पड़ेगा।" यज्ञ की समाप्ति पर महर्षि ने कहा।

"कौन-सा प्रस्ताव ? ऋषिवर।" राजा ने झट पूछा।

"यही कि आपको अपनी रूपवती राजकुमारी का विवाह मेरे गुणवान् पुत्र श्यावाश्व के साथ करना होगा।"

"बड़ा ही उचित प्रस्ताव है, महर्षे" आनद से गद्गद् होकर रथवीति ने कहा। महर्षि के पुत्र के साथ उनकी पुत्री का विवाह सपन्न होगा, इस कमनीय कल्पना ने उनके हृदय मे आह्लाद-तरगिणी का सचार किया। उनकी आखो मे हर्ष के आसू छलकने लगे, देह-यष्टि कटकित हो उठी। अपने आतरिक भाव को दबाने मे अपनेको असमर्थ पाकर राजा ने अपने उत्तर को दुहराया, "बडा ही उचित प्रस्ताव है, महर्षे। श्यावाश्व गुणी है, विद्वान् हैं, ब्रह्मवर्चसी, ब्रह्मतेज से युक्त है। गुरु के पास रहकर उन्होने साग वेदो का उचित अनुशीलन किया है। ब्रह्मचर्य के पालन करने से उनका शरीर तपे हुए सोने की तरह चमकता है; मुखमडल मध्याह्न सूर्य के समान दर्शको के नेत्रो को चकाचौंध करता है। शास्त्रो के अभ्यास से इनकी प्रखर बुद्धि को देखकर बृहस्पति की भी बुद्धि एक बार चकरा उठती है। ये विनय के साक्षात् निकेतन हैं, सद्गुणो के

मनोरम आगार हैं। कौन ऐसा पिता होगा जो अपनी पुत्री का पाणिग्रहण ऐसे सुयोग्य वर के साथ करने के लिए उत्सुक न होगा ? मेरा भी सकल्प गुणवान् व्यक्ति को कन्या देने का है। अतः मैं आपके इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करता हू। परतु एक बात अभी अपेक्षित है ?"

"कौन-सी बात ?"

"महारानी की सम्मति लेना नितात आवश्यक है। बिना उनकी सम्मति पाये मैं इस विषय मे अग्रसर होना नही चाहता। उनकी गोद मे पली प्रिय पुत्री की विवाह-गाठ किस व्यक्ति के साथ जोडी जाय ? इसके लिए मुझसे कही अधिक चिता महारानी को है। अत उनकी सम्मति को मैं अपनी सम्मति से कही अधिक महत्व का मानता हू।"

"बहुत अच्छा", महर्षि ने विचारपूर्ण मुद्रा मे कहना आरभ किया, "अनार्य लोग विवाह को विशेष महत्व प्रदान नही करते, परतु आर्यों की दृष्टि मे विवाह समाज की मूल प्रतिष्ठा है। नीव के बिना प्रासाद की जैसी शोचनीय दशा होती है, विवाह के बिना समाज की भी अवस्था वैसी ही होती है। मूलविहीन वृक्ष के समान विवाहहीन समाज के सूखने में देर नही लगती। हमारी सात्त्विक दृष्टि मे विवाहयाग की गरिमा अन्य यागो की अपेक्षा तिलमात्र भी न्यून नही है। विवाह यज्ञ के समान पवित्र है, कल्पतरु के तुल्य कामद है। विवाह स्त्री-पुरुष की क्षणिक इद्रिय वासना की तृप्ति का साधन-मात्र नही है, प्रत्युत कलुषित काम-वासना को दूर हटाकर विशुद्ध प्रेम को उत्पन्न करने के लिए वर-वधू के हृदयो को एकत्र बांध रखने वाला यह एक परम पवित्र पाश है। यही वह मार्ग है, जिसपर

मनुष्य स्वार्थ से हटकर परमार्थ की ओर अग्रसर होता है, यह वह सोपान है, जिससे मानवसमाज मानवता के पक से हटकर देवत्व के अभिराम मदिर मे जा पहुचता है। आपकी प्यारी पुत्री के इसी विवाह-सस्कार के विषय मे मेरा यह प्रस्ताव है। अत अन्य धार्मिक कृत्यो के समान इसमे जायापति को एक साथ प्रवृत्त होना चाहिए।"

महर्षि की आज्ञा पाकर रथवीति अत पुर मे गये और अपनी महिषी के सामने यह प्रस्ताव रखा। श्यावाश्व की सच्ची प्रशसा करने से भी वे विरत न हुए—श्यावाश्व की मञ्जुल मूर्ति देखते ही क्षणमात्र मे दर्शको के हृत्पट पर सदा के लिए अङ्कित हो जाती है। वे जितने ही रूपवान् हैं उतने ही गुणवान् हैं। उनका बाह्य तथा अभ्यतर समभावेन विमल, विशद और विशुद्ध है। गुरु के आश्रम मे रहकर उन्होने वेदो का गाढ अनुशीलन किया है। मत्रार्थ के ज्ञान मे उनकी निपुणता सर्वत्र विख्यात है। उनका कुल भी नितात पवित्र तथा पुरातन है। वे महर्षि अत्रि के पौत्र तथा मत्रद्रष्टा ऋषि अर्चनाना के पुत्र हैं। अत मेरी दृष्टि मे ऐसे सुयोग्य वर का हमारी गुणवती कन्या के लिए मिलना अनायास साध्य नही है। तुम्हारी जैसी इच्छा, परतु मैं तो इस प्रस्ताव से सहमत हू। सुशिष्य को दी गई विद्या के समान श्यावाश्व से विवाहित मेरी पुत्री कभी शोचनीय नही हो सकती।"

महारानी ने इस प्रस्ताव को उसी उत्सुकता के साथ सुना जिसके साथ उसके गुणो को। वह स्वय एक राजर्षि की पुत्री तथा दूसरे राजर्षि की धर्मपत्नी थी। शास्त्राध्ययन से उनकी बुद्धि प्रखर थी। विचारकर झट बोल उठी, "स्वामिन्! मैं आपकी आज्ञा की सतत अनुगामिनी हू। पर इस अवसर पर आपके

कथन से असम्मति प्रकट करते मुझे खेद हो रहा है। श्यावाश्व सद्गुणो के आगार है अवश्य, परतु उस गुण से नितात विरहित हैं जिसका मूल्य मेरी दृष्टि मे सबसे अधिक है। वह गुण है—ऋषित्व। मत्रवेत्ता तथा मत्रद्रष्टा मे महान् अतर है। समधिक तपस्या के अनुष्ठान से जिस व्यक्ति का प्रातिभ चक्षु उन्मीलित हो गया है अर्थात् ज्ञान का नेत्र खुल जाता है वही ऋषि की महनीय पदवी धारण करने का अधिकारी है। ऋषि की दृष्टि के आगे दर्पण-प्रतिबिम्बित जगतीतल के समान समस्त विश्व प्रस्तुत रहता है। उसके आर्ष नेत्र के सामने त्रिकाल—भूत, भविष्य और वर्तमान—अपनी अनत लीलाओ को समेटकर क्षणमात्र मे उपस्थित हो जाता है। ऋषि उस अक्षर तत्त्व की अपरोक्ष अनुभूति कर लेता है, जिस सत्य के सत्यभूत एक तत्त्व के विज्ञान से समग्र जगत् का एक-एक कण विशेष रूप से ज्ञात हो जाता है। राजन्! मुझे ऐसे ऋषि को अपना जामाता वनाने की इच्छा है। अबतक मेरे कुल मे ऋषि से भिन्न को कन्या का प्रदान किया ही नही गया है। किसी ऋषि को अपनी पुत्री दीजिये, जिससे वह वेद की माता वन सके, क्योकि मत्र-द्रष्टा ऋषि को लोग वेद का पिता मानते है। श्यावाश्व ऋषि के पौत्र हैं, ऋषि के पुत्र भी है, परतु वे स्वय ऋषि तो नही है। अत मेरी सम्मति मे इस समय वे मेरी पुत्री के पाणिग्रहण करने की योग्यता से सर्वथा अयोग्य हैं।"

महारानी के इस कथन के एक-एक अक्षर ने राजा के हृदय मे ऋषित्व के गौरव को जगा दिया। वे अन्त पुर से लौटकर मण्डप मे आये और बडे खिन्न स्वर मे महारानी की असम्मति तथा उसके कारण को कह सुनाया। अर्चनाना यह सुन-

कर चुप हो रहे। उनकी कामना-कमलिनी पर सद्य तुषारपात हो गया। यज्ञ की समाप्ति होते ही वह अपने आश्रम को लौट आये। उनके साथ निराश श्यावाश्व भी उस यज्ञमण्डप से लौट जरूर आये, परतु उनका मन राजकुमारी के पास से नही लौटा।

४

तप का फल भी धैर्य के फल के समान ही मीठा होता है। तपस्या का आचरण वह कल्याणमार्ग है जिसका पथिक कभी दुर्गति मे नही पड़ता, तप के वल से ब्रह्मा विश्व की सृष्टि करता है; तप के वल से सूर्य प्राणियो का कल्याण साधन करता है, तप के वल से धरित्री जीवो को अपनी छाती पर धारण कर टिकी हुई है। भग्नमनोरथ श्यावाश्व ने अपनी अभीष्टसिद्धि के लिए उसी मार्ग का अवलम्वन श्रेयस्कर समझा। महिपी के हाथो प्रत्याख्यान, सुदरी के न मिलने की समधिक वेदना, ऋपित्व लाभ न करने से अधिक ग्लानि—इन सवो ने मिलकर श्यावाश्व के हताश हृदय मे तपस्या करने के लिए द्विगुणित उत्साह भर दिया। ब्राह्मणयुवक ने तपस्या की वेदी पर अपने समस्त सुखो की वलि चढा दी। लगे घोर तपस्या करने। इसका मीठा फल तुरत मिला। एक दिन एक विचित्र घटना के साक्षात्कार से इनके शात हृदय मे कौतुक की लहरी उठने लगी। उन्होंने अपने सामने अनेक दिव्य पुरुपो को देखा—शरीर उनका तप्त सुवर्ण के समान चमकता था, कधो पर था आयुध (ऋष्टि), पैरो मे थी हिरण्यमयी पादुका (खादि), छाती पर थी सोने की माला (रुक्म), हाथो मे थी अग्नि ज्वाला के समान भासुर विद्युल्लता, माथे पर था सुवर्णमय उष्णीप (शिप्रा),

पुरुषो मे यौवन का उमग भरा था। उनकी कमनीय काञ्चन काया से प्रभा फूट रही थी और दर्शक के नेत्रो को क्षणभर के लिए अभिभूत कर रही थी। श्यावाश्व ने विस्मय-भरे विलोचनो से इन दिव्य पुरुषो को बार-बार देखा, परतु उन्हे पहचान न सके।

अततोगत्वा इन्होने पूछना आरम्भ किया, "हे श्रेष्ठतम पुरुष, आप लोग कौन हैं? कहा से आप लोगो का आगमन हुआ है? आपके घोडे कहा है? लगाम कहा है, जिनके सहारे आप लोगो ने यहा पधारने की कृपा की है? ये प्रश्न अभी समाप्त भी न हुए थे कि इन दिव्य पुरुषो ने अपने तपस्वी भक्त पर अपनी अनुग्रह दृष्टि फेरी। श्यावाश्व के अतस्तल से अज्ञान का अधकार-पटल सहसा दूर हो गया। उनके प्रातिभचक्षु का उन्मीलन हो गया। परम तत्त्व की अपरोक्ष अनुभूति उन्हे हो गई। इतने दिनो की कुसुमित कल्पना सहसा मीठे फल फलने लगी। उन्होने अपने इष्टदेव मरुतो को तुरत पहचान लिया और उनकी आतरिक भक्ति-भावना ऋड्मत्रो के व्यक्त रूप मे झट प्रकट होने लगी।

श्यावाश्व ने गद्गद कण्ठ से मरुद्गणो की स्तुति करना आरभ किया

"हे भगवन्, आप लोग जिस किसी राजा को या ऋषि को सत्कर्म मे प्रेरित करते है उसकी विजय सर्वत्र अवश्य-भावी होती है। न तो उसे कोई जीत सकता है, न कोई मार सकता है, न तो उसकी हानि होती है, न व्यथा और न बाधा। न तो उसकी सम्पति कभी नष्ट होती है और न उसकी रक्षा कभी ह्रास को प्राप्त करती है।

"हे मरुद्गण, आप लोग स्पृहणीय पुत्रो से युक्त धन देते है, सामगायन मे निरत ऋषि की रक्षा करते है, देवताओ को हविष्य देनेवाले पुरुष के लिए घोडा देते है और राजा को पुत्र-सम्पन्न बनाते हैं। आपकी दयादृष्टि की महिमा अपार है।

"हे मरुद्गण, आपका माहात्म्य स्तुति करने के योग्य है, वह सूर्य के रूप के समान दर्शनीय है। हम आपके उपासक है। हमे अमृतत्व प्रदान कीजिये। शुभस्थान को जानेवाले आपके पीछे-पीछे रथ अनुवर्तन करते है। आप प्रभूत वृष्टि कर प्राणीमात्र की तृप्ति करते है, आपकी शक्ति अपार है, आपका शरीर घोर तथा भयङ्कर है (घोरवर्पस), आप पर्वतो को प्रकम्पित करते है तथा समुद्र मे भयानक तरङ्गमाला को उत्पन्न करते है। आप वृत्र के मारने के अवसर पर इन्द्र की सहायता करते है। आपने बडी कृपा की जो मेरी तपस्या को सफल बनाया।"

स्तुति मरुद्गणो के नितात आह्लाद का कारण बन गई। उन्होने अपने गले की काञ्चन माला निकाली तथा श्यावाश्व के गले मे डाल दी। भगवान् ने भक्त को अपना प्रसाद अर्पण किया। भक्त अलौकिक आनद से गद्गद हो उठा। उसकी वर्षो की कठिन साधना क्षणभर मे सफल हो गई। मनोरथ की बेलि लहलहा उठी। कामना की कमनीय वल्लरी खिल उठी। भक्त ने अपने इष्टदेव का दिव्य दर्शन कर अपने जीवन को धन्य माना। वह अपने अतृप्त नेत्रो से उन्हें निरख ही रहा था कि मरुद्गण अकस्मात् अतरिक्ष मे अतर्हित हो गये। पुनः दर्शन की लालसा को अपनी आखो मे छिपाकर श्यावाश्व ने उन्हे बद कर लिया।

५

प्रेम की महिमा अगाध है। वह निर्बलो मे बल का सचार करता है, निरुत्साहो मे उत्साह का पुट भरता है, निराशा मे आशा का प्रश्रय देता है, निरुद्योगियो मे उद्योग का आश्रय देता है। जिधर दृष्टिपात कीजिये, उधर ही प्रेम का प्रभाव लक्षित होता है। प्रभात-पवन के मन्द झोको से झुकी लताए अपनी नीरव भाषा मे, अपने प्रेमी की चाटुकारी मे चहकनेवाली चिड़िया अपनी अस्फुट भाषा मे तथा प्रियतम के विकसित स्मितवदन को निरखकर मचलनेवाली सुन्दरिया अपनी स्फुट भाषा मे इसी प्रेम के कीर्ति-कलाप का गायन किया करती हैं। श्यावाश्व को कठिन तपस्या मे लगाने का श्रेय प्रेम को ही है और उसको साधना को सफल बनाने का गौरव भी प्रेम को ही प्राप्त है। मनोरमा के प्रेम ने विप्र श्यावाश्व को ऋषि श्यावाश्व बना दिया। प्रेम की करनी सचमुच विचित्र है।

इस अद्भुत दृश्य को इन्ही चर्मचक्षुओ से साक्षात्कार कर श्यावाश्व किंचित् किंकर्तव्यविमूढ से बन गये थे। चेतनता आते ही उन्होने अपने शरीर, मन और हृदय मे एक विचित्र प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव किया। इष्टदेव की अपरोक्ष अनुभूति की सुधा ने उन्हे आनन्द-सागर मे डुबा दिया। श्यावाश्व का नवीन जन्म हुआ। अब वे द्विजभाव से ऊपर उठकर ऋषि-भाव मे प्रविष्ट हो गये। आश्रम छोडकर अपने पितामह महर्षि अत्रि के दर्शन के लिए चल पडे। मार्ग मे जो कोई इन्हे देखता, झट मस्तक झुका देता था। आगे चलकर महाराज 'तरन्त' और उनकी परम विदुषी महिषी 'शशोयसी' से इनकी भेट हुई। ये दोनो स्वय गुणियो की पहचान मे बडे जागरूक थे। ऋषि के

दर्शनमात्र से इन्होने उनकी सिद्धि का अनुमान कर लिया और उनका सत्कार करने के लिए अधीर हो उठे। महारानी की परख राजा से कहीअधिक थी।

शशीयसी वडी उदारचेता थी। वह दु खियो का दु ख दूर करती, धन चाहनेवाले कामियो की कामना पूरा करती, अपना मन सदा देवो की पूजा-अर्चा मे लगाती। उसने देखते ही ऋषि की वास्तविक योग्यता को समझ लिया और दोनो ने मिलकर श्यावाश्व की वडी अभ्यर्थना की, सैकडो गायो, घोडो और सुवर्ण आभूषणो का दान देकर अपनी गुणग्राहिता का पर्याप्त परिचय दिया। इतना ही नही, तरन्त ने ऋषि को अपने अनुज राजा पुरुमीढ के पास भी भेजा। पुरुमीढ ने भी वैभव के अनुसार अपने विशिष्ट अतिथि के सत्कार करने मे त्रुटि नही की। इन राजाओ के आदर-भाव को देखकर श्यावाश्व को परम सतोप हुआ और उन्हे अपने ऋषित्व की उपलब्धि पर स्वाभाविक अभिमान का भी उदय हुआ।

६

श्यावाश्व के कुशलपूर्वक सफल मनोरथ लौट आने पर महर्षि अत्रि के आश्रम मे आनन्द की सरिता वहने लगी। आश्रम-वासियो के मुखमण्डल पर प्रसन्नता नाच उठी। श्यावाश्व ने वृद्ध पितामह अत्रि के चरणो मे अपने नाम और गोत्र का उच्चारण कर प्रणाम किया। वालक के गले मे रुक्ममाला देखते ही अत्रि की आखो से आनन्द के आसू टपक पडे, मरुद्गणो की महती कृपा का वाह्य चिह्न पाकर वे गद्‌गद हो गये और श्यावाश्व से विह्वल वचनों मे कहने लगे, "वत्स, आज मेरा दीर्घ जीवन वस्तुत सफल हुआ। आज मैं इन्ही नेत्रो से अपने

पौत्र के ऋषित्व लाभ के असदिग्ध चिन्हो को देख रहा हू। वत्स, अब तुम अजेय हो, अतिरस्करणीय हो, तुमने कठिन तपस्या कर सद्य. ऋषिपद को प्राप्त किया है। मेरा मुख तथा मेरे कुल का भविष्य तुम्हारे इस आचरण से सदा उज्ज्वल रहेगा। अब अर्चनाना की मध्यस्थता की आवश्यकता नही रही। तुम स्वय जाकर रथवीति दाल्भ्य की पुत्री का पाणिग्रहण कर आवो।"

पितामह की आज्ञा शिरोधार्य कर श्यावाश्व रथवीति से मिलने के लिए चल पडे, परन्तु अपने मुह अपनी बडाई करना हास्यास्पद समझकर उन्होने भगवती रात्रि को अपना दूत बनाकर राजा के पास इन शब्दो मे भेजा—"भगवती रात्रि (उर्म्या), तुम स्वय विज्ञ हो। मेरे हित को हानि न पहुचे, इस बात का ध्यान रखना। रथी जिस प्रकार रमणीय वस्तुओ को रथ मे रखकर गतव्य स्थान को ले जाता है, उसी प्रकार तुम भी मरुद्गणो की मेरी यह स्तुति राजा रथवीति दाल्भ्य के पास ले जावो और मेरे ऋषित्व लाभ की कथा उसके कानो मे सुना आवो।" रात्रि देवी ने ऋषि के मनोरथ की पूर्ति के लिए दूतकर्म स्वीकार किया।

सम्राट् रथवीति की राजधानी मे आज खूब चहल-पहल मची हुई है। यह उत्सव उस समय से भी कई गुना बढ-चढकर है जब राजा ने सोमयाग का अनुष्ठान किया था। वह पुराना अवसर था सोमयज्ञ का और यह नूतन अवसर है पुत्री के विवाह-यज्ञ का। दोनो अवसर नितान्त पवित्र, पुण्यमय तथा कल्याणकारक हैं। परन्तु आज की छटा कुछ विचित्र है।

मणिमय मण्डप के वीच मे वेदी पर अग्निदेव की ज्वाला उपस्थित जनमडली को प्रभाभासुर वना रही है। राजदम्पती अपनी गुणवती सुसज्जिता पुत्री मनोरमा के साथ निमत्रित व्यक्तियो का स्वागत कर रहे है। इतने मे एक मजुल मूर्ति उस मडप मे उपस्थित हुई। ब्राह्मतेज से चमकता मुख-मडल, विशाल स्निग्ध नयन, माथे पर पिंगल जटाजूट, शरीर पर शुभ्र वल्कल वस्त्र, हाथ मे कमडलु और पैरो मे पादुका। प्रवेश करते ही मव लोग श्यावाश्व के स्वागत मे उठ खडे हुए। राजा ने उन्हे ऊचे आसन पर वैठाकर उचित आतिथ्य सत्कारकर मीठे शब्दो मे विनती करना आरभ किया

"भगवन्, सदय हृदय से मेरे उस अपराध को क्षमा कीजिये।"

"कौन-सा अपराध, राजन्" श्यावाश्व ने आश्चर्य से पूछा।

"यही आपका पहला प्रत्याख्यान। महर्षि अर्चनाना ने आपके विवाहार्थ मेरी पुत्री मुझसे मागी थी, परन्तु मैंने अपनी रानी की सम्मति मानकर ऋषिभिन्न (अनृषि) को कन्या देना स्वीकार नही किया था।"

"परन्तु मैं तो आप दोनो को इस विषय ने निर्दोष पाता हू। आप लोगो ने उस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर अपनी कुल-मर्यादा को अक्षुण्ण वनाये रखने का स्पृहणीय कार्य किया है। सचमुच अनृषि को कन्या प्रदान करना कोई शोभन कार्य नही है।"

"ऋषिवर्य, मेरी अस्वीकृति ने आज आपको ऋषिपद पर अभिषिक्त कर दिया है, रात्रि देवी के मुख से यह समाचार सुनकर हमारे हर्ष की सीमा नही है, आज आप हमारी एक-मात्र सन्तति मनोरमा का पाणिग्रहणकर मुझे कृतार्थ कीजिये। अग्निदेव को साक्षी वनाकर मैं इस मण्डप के नीचे अपनी

प्यारी पुत्री का समर्पण आपके हाथ मे कर चिन्तामुक्त होना चाहता हू। ब्राह्मतेज का क्षात्रवल के साथ यह स्पृहणीय सम्बन्ध ससार के परम मगल का साधन बने।"

श्यावाश्व की स्वीकृति की देर थी। स्वीकृति मिलते ही राजा ने वैदिक विधि से मनोरमा का दान ऋषि के हाथो मे कर दिया। वर-वधू की अनुरूप जोडी देखकर प्रजामण्डली प्रसन्न हो उठी। महर्षि अर्चनाना की राजकुमारी को पुत्रवधू वनाने की कामना सफल हो गई और महिषी का ऋषि जामाता मिलने के कारण अपनी पुत्री को 'वेद जननी' की सज्ञा प्राप्त होने का मनोरथ चरितार्थ हो गया। राजा रथवीति दाल्भ्य ने राज्य कार्य की चिन्ता छोडकर हिमालय के अचल मे गोमती नदी[1] के तीर पर तपस्या करते हुए परमपद को प्राप्त किया।

आज भी भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमा पर गोमती नदी पत्थरो से टकराती कलकल करती हुई रथवीति के आश्रम से होकर वहती है और सिन्धु से मिलते समय इस आदर्श नरपति के पवित्र चरित्र की कमनीय कहानी उसके कानो मे सुनाती है।

---

[1] सिन्धु की सहायक गोमल नदी।

: ८ :

पतिव्रता का प्रभाव

१

आज अपर समुद्र के तीर पर स्थित विशाल आश्रम मे उत्सव की तैयारियां हो रही हैं। शुक्लवसना सुन्दरी के समान फेन के व्याज से मद-मद मुस्कराती नर्मदा अपने प्रियतम रत्नाकर से आलिगन के निमित्त बड़ी उतावली से प्रवाहित हो रही है। आश्रम को प्रकृतिदेवी ने अपने कर-कमल से सुसज्जित कर रखा है। स्थान-स्थान पर अभिराम वन्दनवार, रमणीय पुष्पमाला झूम-झूमकर आश्रमवासियो के हृदयभरे हर्षातिरेक को बाहर प्रकट कर रही हैं। जिधर आंखे उठती है उधर ही आनन्द से ठिठक कर रह जाती हैं। इस नवीन हर्ष के भीतर एक रहस्य छिपा हुआ है। आज इस भृगुकच्छ आश्रम के निवासी महर्षि भृगु की धर्मपत्नी 'पुलोमा देवी' का पुसवन सस्कार होने जा रहा है।

महर्षि भृगु अपने समय के एक महान् तपस्वी ऋषि है। ये ब्रह्मदेव के पुत्र हैं, परन्तु इनकी उत्पत्ति विचित्र प्रकार से हुई थी। पितामह ब्रह्मा ने वरुण के यज्ञ मे अग्नि से इन्हे उत्पन्न कर दिया था। तब से भृगवंश तथा अग्निदेव का सम्बन्ध नितान्त अन्तरग है। एक दिन की विचित्र घटना है कि भृगु अपनी स्त्री को अग्नि की सरक्षकता मे छोडकर अभिषेक के लिए कहीं बाहर निकल गये। अवसर पाकर पुलोमा नामक

एक राक्षस उस आश्रम मे जा पहुचा और निर्जन आश्रम मे एक सुन्दर तरुणी को अकेली देखकर उसके हृदय मे कामाग्नि दहकने लगी। ऋषिपत्नी ने स्वाभाविक विनम्रभाव से नवागत अतिथि के लिए फल-मूल की व्यवस्था की, परन्तु अतिथि की भावभगी से उन्हे समझते देर न लगी कि उसके हृदय मे अशान्ति ने अपना राज्य जमाया है। भृगुपत्नी के दर्शन-मात्र से उसके हृदय को एक प्राचीन कामकथा की स्मृति शल्य के समान पीडित करने लगी—"ओह! पिता ने इस सुन्दरी का विवाह मेरे ही साथ करने का निश्चय किया था। मेरी स्वीकृति भी उन्हे मिल चुकी थी, परन्तु मेरे उग्र स्वभाव की कल्पना ने इस मणि-काचन योग को सुसम्पन्न होने नही दिया। जो मेरे रम्य प्रासाद के प्रागण को अपने मधुमय हास्य से सरस बनाती, वही अपने पिता के दुष्ट स्वभाव के कारण आज एक जीर्ण-शीर्ण कुटीर के द्वार पर बैठी अपने बुरे भाग्य को कोस रही है। मैं इस आश्रम के कारागृह से इस रमणीरत्न का उद्धार करू गा। परन्तु इसकी पहचान आवश्यक है।"

इतना विचारकर पुलोमा ने अग्निशाला मे अवस्थित वैतान (यज्ञीय) वह्नि से पूछा, "भगवन्! आप सब प्राणियो के भीतर विद्यमान रहते है, पुण्य-पाप के प्रत्यक्ष साक्षी है, ऋषिपत्नी के नाम-गोत्र से परिचित है। क्या यह भृगुपत्नी वही पुलोमा नही जिसका पाणिग्रहण मेरे साथ निश्चित हुआ था? परन्तु किसी कारण से इसके पिता ने भृगु के साथ इसका विवाह कर दिया।"

"मुझे वह शुभ घडी आज भी स्मरण है, जब पुलोमा की परिणय-विधि भृगु के साथ वैदिक मन्त्रो की सहायता से मेरे

सामने ही निष्पन्न हुई थी।" अग्निदेव ने भय से धीमे स्वर मे कहा।

असुर पुलोमा की कामवासना इस उत्तर को सुनते ही जाग पड़ी। उसे मनमानी निधि मिल गई। जिसकी खोज मे वह अब-तक भटकता फिरता था, वह स्वय ही खुले निधि के समान एक निर्जन आश्रम के सूने कोने मे विखरी हुई मिली। अपनी आसुरी माया का आश्रय लेकर वह वराह के रूप मे उस भृगुपत्नी के सहस्रो प्रतिपेधो की अवहेलना करता हुआ वलात् हरण कर ले भागा। निर्जन आश्रम, सहायको का नितान्त अभाव, ऋषि भृगु के आगमन मे अकारण दीर्घ विलम्ब, गर्भ के कारण ऋषिपत्नी की अलस देहयष्टि—इन सव कारणो से भृगु-पत्नी की नि सहायता मूर्तिमती वनकर पद-पद पर प्रकट होने लगी। माता के अत्यन्त क्रोध के कारण गर्भस्थ वालक भूतल पर आ गिरा। परन्तु उस आदित्य के समान तेजस्वी वालक के सामने तम.स्वभाव पुलोमा को नष्ट होते देर न लगी। जल-भुनकर वह भस्म की ढेरी वन गया। ब्रह्मा ने इस सकट के समय रोनेवाली भृगुपत्नी को सान्त्वना, दी परंतु ऋपिपत्नी के नेत्रो से इतने आँसू निकले कि 'वधूसर' नामक एक नई नदी का वही प्रादुर्भाव हो गया। गर्भ से च्युत होने के कारण ही उस तेजस्वी वालक का नाम पडा च्यवान। शिशु च्यवान की उत्कृष्ट ओजस्वित का प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर पृथ्वी वन्य हो गई। आश्रम आनन्द से खिल उठा।

आश्रम मे आने पर भृगु के क्रोध का ठिकाना न रहा। वैतान वह्नि का यह अन्याय आचरण! स्त्री की धर्षणा का अपराध अग्नि के ही मत्थे था। अत. उन्होने उसे 'सर्वभक्षी'

होने का घोर शाप दिया। अग्नि की मूर्ति का सर्वत्र लोप हो गया। लोक-व्यवस्था के सचालक पितामह ने अग्नि को समझा-बुझाकर प्रसन्न कर लिया और अग्नि के घोर रूप को, शव को जलानेवाले रूप को, सर्वभक्षक बनने का नियम कर उसे शाप से मुक्त कर दिया। बालक च्यवान ने अपने पिता से आथर्वण अभिचार तथा सजीवनी विद्या की प्राप्ति कर अपने बाल्यकाल को उपयोगी बनाया।

२

पावन पुष्करक्षेत्र को च्यवान ने अपनी तपस्या के निमित्त पसन्द किया। इस क्षेत्र की शोभा नितान्त लुभावनी थी। उस अभिरामता के अवलोकन के लिए ही जान पडता था कि पुष्कर-ह्रद ने सैकडो विकच कमल नेत्रो को खोल रखा था। च्यवान का यह आश्रम जंगल के बीच मे स्थित था, जनावास से इतना दूर कि मनुष्यो के कोलाहल के साथ उनकी चिंताए वहातक पहुच नही सकती थी। तपोवन इतना स्तब्ध और निर्जन था कि प्रकृति स्वय मौन मुद्रा धारण कर किसी गहरी पहेली के सुलझाने में व्यस्त दीख पडती थी। च्यवान की कठोर तपस्या के कारण उस स्थान के प्रत्येक रज कण मे आध्यात्मिकता तथा पवित्रता ने आश्रय ग्रहण किया था। ग्रीष्म के अनंतर वर्षा का आविर्भाव हुआ, वर्षा के बाद शरत् का, एक ऋतु के पीछे दूसरी ऋतु आई और चली गई, परतु महर्षि च्यवान की समाधि नही टूटी।

अटूट एकाग्र भाव से वे आध्यात्म-चिंतन मे इतने निमग्न हो गये कि देह की सुध-बुध जाती रही। दीमको के ढेर के भीतर उनकी आधी मूर्ति छिप गई। उनकी गर्दन को सापो ने

अपने लटकने का स्थान बना दिया। उनकी केंचुल ढेर-की-ढेर चारो ओर बिखरी लटक रही थी। कधो तक लबी-लबी पिंगल जटाए लटकती थी जिनके झुरमुट में पक्षियो ने अपने शिशु-शावको की रक्षा के लिए सैकडो घोसले बना रखे थे। समस्त शरीर सजीवना का एक विराट अट्टहास प्रतीत होता था, परन्तु निर्जीवता के भीतर से सजीवता की मूर्ति बनी दो आखें झाक रही थी। उनमें तेज पुज झलक रहा था। आश्रम में दैवात् उपस्थित होने वाले व्यक्ति के मन मे तनिक भी भान न होता था कि आश्रम की निर्जनता को भग करनेवाले किसी पुरुप की सत्ता वहा कथमपि विद्यमान थी, परन्तु उसकी पवित्रता आगन्तुक के हृदय मे स्वत चिंता की रेखा को दूरकर शाति का अपार पारावार उपस्थित कर देती थी। इस निर्जन आश्रम ने अनेक व्यक्तियो को धोखा दिया और अतिम बार धोखा खाने वाले थे उस देश के मानी महीपति शर्याति मानव के सैनिक-बालक।

२

शर्याति मानव इसी पश्चिम आर्यावर्त के एकच्छत्र सम्राट् थे। एकबार मृगया की कामना को चरितार्थ करने के लिए वे उसी पुष्कर-मडल मे आ पहुचे। साथ में सैनिको का विराट उत्साही दल, अन्त पुर की रमणीय ललनाए तथा कमनीयगात्री तरुणी कन्या सुकन्या थी। च्यवान की कठोर तपस्या से सम्राट् भली-भांति परिचित थे और उन्होने अपने अनुचरो से तपस्या में विघ्न डालने वाले किसी भी कार्य को न करने का स्पष्ट शब्दो मे प्रतिपेध किया। सैनिको ने राजा की आज्ञा को मान लिया, परन्तु न माना केवल चंचलस्वभाव बालको ने। च्यवान की

जीर्ण-शीर्ण मूर्ति उनके हृदय मे कौतुक उत्पन्न करने लगी। उन्होंने धृष्टता से महर्षि को बूढा और निकम्मा जानकर पत्थरो से खूब पीटा। ऋषि का शात चित्त इस दुर्व्यवहार से नितात क्रुद्ध हो गया।

सैनिको मे परस्पर कलह उठ गया। बाप बेटे से लडने लगा और भाई भाई से। ऋषि के तिरस्कार का फल तुरत फलने लगा। राजा के कानो मे दुर्घटना की यह बात पहुची। उसने समस्त अनुचरो से ऋषि के तिरस्कार की बात पूछी, जिससे उसे सच्ची बातो का पता लग गया। राजा तुरत अपनी कन्या के साथ उस वल्मीक को देखने के लिए गया और उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने वहा तपोवृद्ध तथा वयोवृद्ध भार्गव च्यवान की सौम्य मूर्ति देखी। मस्तक नवाकर उसने प्रणाम किया और अनजान मे किये गए बालको के अपराध के लिए क्षमा मागी। महर्षि का सदय हृदय सैनिको की दुर्दशा की बात सुनकर पिघल उठा, परतु दर्प के कारण पूज्यो की अवहेलना का दड सुकन्या के परिणय पर निर्भर रखा। शर्याति मानव ने च्यवान की बात तुरत मान ली। अपनी सुन्दरी कन्या का पाणिग्रहण उनके साथ उसी समय कर दिया। ऋषि प्रसन्न हो गये, सैनिको के माथे की विपत्ति टली। च्यवानाश्रम मे रहकर सुकन्या वृद्ध महर्षि की बडी लगन से सेवा करने लगी। अभ्यागत अतिथियो की अभ्यर्थना, ऋषियो तथा अग्नियो की परिचर्या, उसके जीवन का एकमात्र व्रत बन गया।

४

प्रात काल का सुहावना समय था। भीनी-भीनी अलसानी हवा धीमी-धीमी बह रही थी। दिनकर का सुवर्णमय बिम्ब

प्राची क्षितिज के ऊपर आ गया था। उसकी मजुल प्रभा आश्रम के ऊपर एक सुनहली चादर फैला रही थी, जिसके भीतर से उस तपोवन की दिव्य शोभा फूट रही थी। फल-पुष्पो से झुके हुए वृक्षो पर पक्षियो का चहकना कानो मे सुधा की धारा उ डेल रहा था। सुकन्या अपनी शय्या से उठी। नित्यकर्म के अनतर उसने पुष्कर मे जी भरकर स्नान किया। बाहर निकलकर ज्योही वह अपने कपडे पहनने मे व्यस्त थी, उसकी सुकुमार देहयष्टि पर दो आगन्तुक नवयुवको की दृष्टि पडी। उसके शरीर पर झलक रही थी यौवनसुलभ अनिर्वचनीय कमनीयता। नेत्रो मे चमक रहा था उन्मादकारी रसीलापन। युवको से चार आखें होते ही वह लज्जा के कारण ठिठक-सी गई। अभ्यागतो की सेवा का अयाचित अवसर पाकर वह सरल भाव से आगे बढी।

दोनो युवको मे से एक ने पूछना आरभ किया, "तुम कौन हो? मानवी या देवी? इस निर्जन जगल मे अकेले रहने का क्या कारण है?"

"मैं मानवी हू, सम्राट् शर्यात मानव की एकमात्र राजकुमारी तथा च्यवान भार्गव की पाणिगृहीती भार्या। अपने पतिदेव की सेवा के लिए इस निर्जन वन का निवास मैंने ग्रहण किया है।" सुकन्या ने आगन्तुक के प्रश्न के उत्तर मे कहा।

"परन्तु क्या तुम आश्रम के योग्य हो? कमल के जीवन की सफलता राजा के गले मे हार बनकर रहने मे ही होती है, सुनसान जगल मे सूखकर काटा बनने मे नही। तुम्हारी काचनमयी काया को वल्कल उसी भाति दूषित कर रहे हैं जिस प्रकार स्फुटचद्रतारका विभावरी को अरुण का आकालिक उदय।

"तुम्हारे निर्मम पिता के क्रूरहृदय की बात सोचकर मेरे रोगटे खडे हो रहे हैं। उसने इस वृद्ध के गले मे तुम्हे डालकर घोर अन्याय किया है, तुम्हारे नैसर्गिक सौदर्य तथा प्रेमपूरित हृदय के प्रति ! जीर्ण-शीर्ण गात्र, माथे पर पडी झुर्रिया, चवर के समान श्वेत बाल, दतविहीन पोपला मुह,—प्रेम का विराट अट्टहास ! च्यवान की तमोमयी जीवनसध्या है और तुम्हारे जीवनप्रभात का अभिराम अरुणोदय । इस वृद्ध का परित्याग कर हममे से किसी एक को वरण कर अपने शेष जीवन को आनद से बिताओ।" अश्विनीकुमार ने कहा।

वक्ता के रूप को भली-भाति पहचानकर सुकन्या ने कहना आरभ किया, "भगवन् नासत्यौ, आपके मुख से यह प्रार्थना ! चद्रिकामडित रमणीय शात आकाश से आकालिक वज्रपात ! च्यवान महर्षि मेरे पूज्य पतिदेव है, इनकी सेवा ही मेरे जीवन का एकमात्र महनीय व्रत है। भारतीय ललनाएं कभी बाह्य चमक-दमक, ऊपरी आडबर, पर मुग्ध नही होती। वे तो हृदय को पहचानती हैं। परिणय पति-पत्नी के हृदय को प्रेमपाश मे बाधनेवाला एक अच्छेद्य बन्धन है। पतिसेवा मेरा परम धर्म है। पति की अवस्था तथा उसका रूप कथमपि नियामक नही है।"

सुकन्या के इस उत्तर से अश्विनीकुमार को नितान्त परितोष हुआ। सुकन्या अपने पातिव्रत की परीक्षा मे पूरी उतरी। अमरवैद्य अश्विनीकुमार ने च्यवान के साथ पुष्कर मे गोता मारा। बाहर निकलते ही अतुल आश्चर्य ! दो के स्थान पर तीन अश्विनीकुमार—एक समान सुहावना रूप, एक दूसरे के नितान्त प्रतिरूप। सुकन्या ने इस घटना को देखा और इस नवीन रूप

मे भी अपने पति को पहचानते उसे देर न लगी। वसंत में सहकार को अतिमुक्तलता ने स्वीकार किया। आश्रम खिल उठा।

च्यवान ने अश्विनीकुमार के इस अलौकिक व्यापार को देखा। आनन्द से उनका हृदय गद्गद हो उठा, उनके माथे से वुढापे की कालिमा मिटी, यौवन की आभा फूट चली। प्रत्युपकार की आशा से उनका मस्तक ऊचा उठ गया और उन्होंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि अश्विनीकुमार को सोमपीथी (सोमरस पीने का अधिकारी) विना वनाए वे कभी अपने हृदय मे गातिधोध नही करेंगे।

च्यवान की यौवनप्राप्ति का समाचार राजा शर्याति के कानो तक पहुंचा। इस आश्चर्यजनक घटना को स्वय देखने तथा अपने जामाता और कन्या के अभिनन्दन करने के लिए वे स्वय च्यवान के आश्रम मे पधारे। महर्षि के इस रूप-परिवर्तन को देखकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। च्यवान ने अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति का अवसर देखकर राजा से एक विराट यज्ञ का आयोजन करवाया।

५

आज शर्याति की राजधानी मे खूव उत्सव मचा हुआ है। आज सोमयाग का प्रमुख 'सुत्या' दिवस है। ऋत्विजो के द्वारा सोम का अभिस्रवण किया गया। ऊर्णा के वने पवित्र से छानकर द्रोणकलश मे उसे रखा गया तथा विशुद्ध गोदुग्ध उसमे मिलाया गया। ग्रह (पात्र) मे स्थापित सोमरस के पान के लिए देवगण लालायित हो उठे। इद्र अपनी मडली के साथ सोमपान के लिए उपस्थित होकर यज्ञ की शोभा वढा रहे थे। भिन्न-भिन्न देवताओ के लिए सोमग्रह स्थापित कर दिये गए। ऋषि

ने अपनी पूर्वदत्त प्रतिज्ञा के अनुसार सोम से परिपूर्ण ग्रहो को अश्विनीकुमार को समर्पण किया। देवमडली मे कोलाहल मच गया।

मडली के प्रमुख इन्द्रराज ने च्यवान को ललकारकर कहा, "महर्षे, आप यह कौनासा नवीन मार्ग चलाना चाहते है। नासत्यौ को सोम का अर्पण! एकदम नई बात! प्राचीन परपरा का इतना विषम तिरस्कार! अश्विनीकुमार हमारे भिषज् अवश्य हैं, परन्तु दिन-रात रोग के निदान तथा चिकित्सा मे व्यस्त रहने के कारण उन्हे देवसुलभ विद्याओ के उपार्जन तथा अध्यात्मचिंतन का अवसर कहा? वे देवत्व से नितात च्युत हैं। मनुष्यो की भी चिकित्सा मे उनका लगा रहना हमारी दृष्टि मे उन्हे हेय बनाने का एक अन्य कारण है।"

च्यवान भार्गव ने देवराज की यह बात सुनी, परतु उन्हे अपने कानो पर विश्वास न होता था कि इतनी घृणित तथा स्वार्थपूर्ण बात किसी सात्त्विक देवता के मुख से निकल सकती है। देवताओ की भरी मडली मे वे इन्द्र के समक्ष गभीर मुद्रा मे बोलने लगे, "देवगण, आज मैं अपने उपकारी अश्विनीकुमार के पक्ष को लेकर नही बोल रहा हू, प्रत्युत उस विद्या की महत्ता को प्रकटित करना चाहता हू, जिसके बल पर सारी सृष्टि का कल्याण-साधन हो रहा है। आयुर्वेद विद्या क्या हमारी अवहेलना की पात्री है? क्या जगत् के मगलकारक प्राणाचार्य हमारे तिरस्कार के भाजन है? शरीर ही धर्म का आद्य साधन है।

"शरीर के विकृत होने पर क्या अध्यात्म का चिंतन सुलभ हो सकता है? शरीर को रोगो से मुक्त रखना भारी कला

है। अश्विनीकुमार की शल्य-चिकित्सा की प्रशंसा शब्दो मे नही कही जा सकती। उन्होंने मधुविद्या के ग्रहण करने के लिए दध्यड् आथर्वण ऋषि के सिर पर अश्व का मस्तक जमा रखा था और ग्रहण के अनतर आपने जब वह सिर काट डाला, तब असली सिर फिर से जोड दिया। विश्पला नामक युवती के टूटे हुए जघे की जगह लोहे की बनी (आयसी) जघा को जोड दिया। उनके उपकारो की परपरा को कौन सहृदय भूल सकता है? अगाध समुद्र के भीतर जहाज के छिन्न-भिन्न होने से डूबनेवाले, राजर्षि तुग्र के पुत्र भुज्यु को इन्होंने बचाकर किनारे लगाया। जब दैत्यो ने पुत्रपौत्र के साथ महर्षि अत्रि को गाढ अधकार मे कारागृह मे बन्दकर मार डालने का उद्योग किया था, तब इन्होंने महर्षि के प्रिय प्राणो की रक्षा की थी। अपने पिता वृषागिर के द्वारा अधे कर दिये गए राजा ऋज्राश्व को नेत्रदान कर नासत्यो ने जो उपकार किया है, क्या उसका बदला चुकाया जा सकता है? देवाधिदेव! देव तथा मानव का परस्पर सहयोग एक स्पृहणीय वस्तु है। यदि देव मानव के सुख-दु:ख मे सहानुभूति भी नही दिखलाता, तो किस हेतु वह उसकी सहानुभूति पाने का इच्छुक बना हुआ है? मुझे अश्विनीकुमार-सा परदु:खकातर देवता दृष्टिगोचर नही होता। आज से ससार आयुर्वेद के महत्त्व को समझे। अत मैं दोनो अश्विनो को सोमपीथी अवश्य बनाऊगा। सामर्थ्य हो तो कोई मुझे रोके।"

यज्ञमडप मे घोर निस्तब्धता छा गई। देववृन्द एक दूसरे का मुख देखने लगे। महर्षि च्यवान ने ज्योही सोमग्रह (सोमरस का पात्र) अश्विन् के सामने रखा, त्योही इन्द्र ने अपने वज्रप्रहार

से उनके हाथ काट डालने के लिए अपना तीव्र आयुध उठाया। ऋषि के कल्याण के लिए शर्याति विचलित हो उठे, परतु उनकी अशाति शीघ्र कौतुक के रूप मे बदल गई। इद्र के बाहु अचानक स्तभित। बाहुस्तभन के साथ-ही-साथ च्यवान ने विधिवत् अभिचार मत्रो से अग्नि मे आहुति दी जिससे मद नामक महा-काय महावीर्य असुर की सद्य उत्पत्ति हुई। पर्वतसन्निभ बाहु, प्रासादशिखराकार दशयोजन आयत दीर्घ दष्ट्रा,सूर्य-चद्र के समान नेत्र, कालाग्नितुल्य मुख, विद्यच्चपल लोल जिह्वा, प्रलय-काल के मेघ के समान गर्जन करता हुआ वह दानव इद्र को अपनी उदरदरी के भीतर करने के लिए ज्योही आगे बढा, देवराज वायुविकपित वृक्ष के समान कापने लगे और लगे ऋषि को मनाने, "महर्षे, आपका कथन सत्य हो, मुझे कोई भी आपत्ति नही है। इस कृत्या को शीघ्र दूर कीजिये। च्यवान का क्रोध शात हुआ। मद का सुरापान, स्त्री, मृगया तथा द्यूत मे पृथक् विभाग कर कृत्या को उन्होने तुरत हटा दिया।

सोमयाग सानद समाप्त हुआ। शर्याति मानव की अभि-लाषा पूर्ण हुई। सुकन्या ने अपने पातिव्रत के बल पर पति का मगल साधन किया। नासत्यो ने सोमरस का पान कर अपने को धन्य माना। उपस्थित जनता ने आश्चर्यभरे नेत्रो से च्यवान भार्गव के महनीय प्रभाव तथा अतुल आध्यात्मिक बल को देखा। सच्चे तपस्वी के अतर्बल को प्रत्यक्ष देखकर ससार ने तपस्या के महत्त्व को समझा। महर्षि च्यवान के चरणो पर जगत् नतमस्तक हो गया।

: ९ :

प्रेम का पुरस्कार

१

प्रतिष्ठानपुर मे राजमहल के सोने के वने कगूरे वालसूर्य की प्रभा के पडने से चमक रहे थे। दर्शको की आखें उनपर पडते ही चकाचौंध हो जाती थी। उपवन मे खिले हुए फूलो की सुगन्ध से सनी हवा मद-मंद बह रही थी। पतितपावनी त्रिवेणी प्रसादतल को अपने शीतल जल से धोती हुई द्रुतगति से वह रही थी। कचन के वने कगूरे जलराशि मे प्रतिविम्वित होकर जल के वेग के कारण नाना प्रकार के आकार धारण कर रहे थे। जिधर दृष्टि जाती, उधर ही सजावट से नेत्र शीतल हो जाते थे। प्रत्येक वस्तु मे उल्लास दीख पडता था, प्रत्येक स्थान पर सजावट की चमक-दमक थी। प्रजावृन्द का हृदय अलौकिक आनन्द से विभोर हो रहा था और सवसे अधिक आनंद उछल रहा था राजा पुरूरवा के हृदय मे। प्रजाओ के नेत्रो मे अपनी साम्राज्ञी के निमित्त कौतुकपूर्ण हर्ष झलक रहा था और राजा पुरूरवा के हृदय मे अपनी प्रियतमा उर्वशी के सत्कार के लिए आनद का सागर हिलोरे ले रहा था।

आज इस सुहाने प्रात काल मे उर्वशी के स्वर्गलोक से भूतल पर आगमन का सुवर्ण अवसर है। उसीकी प्रतीक्षा मे प्रतिष्ठान-पुर के महाराज ऐल पुरूरवा तथा उनके प्रजावर्ग उत्सुकता

की भव्य मूर्ति बने बैठे हैं।

× × ×

महाराजाधिराज पुरूरवा ऐलवंश के प्रवर्तक मानी महीपति हैं। शरीर मे यौवन की उमग है और मुखमडल पर सौंदर्य की स्निग्धता। शरीर पर कवच धारण कर जब वे रणभूमि मे पदार्पण करते हैं तब उनकी शौर्यमूर्ति किस पराक्रमी शत्रु के हृदय मे आतक पैदा नही करती? प्रजा का अनुरजन उनके जीवन का व्रत था। प्रजाओ को उस मगलमय दिन की स्मृति अबतक बिलकुल बनी हुई है जब उनका अभिषेक उन्हींके प्रतिनिधियो के हाथो सम्पन्न हुआ था। उदुम्बर की बनी-आसदी (सिहासन) पर व्याघ्रचर्म का आसन बिछा हुआ था। उसीपर सर्वौषधि से स्नानकर वे बैठे थे और प्रजाओ की प्रत्येक श्रेणी का प्रतिनिधि उनके सामने आकर खडा होता था और उन्हे साम्राज्य के अधिकार से विभूषित करता था। साथ ही अपनी रक्षा का भार उनके सुपुर्द करता था। प्रजा को वह अवसर भूला नही है जब जनमडली मे से पुरोहित ने आगे बढकर राजा से प्रतिज्ञा कराई थी कि जिस दिन से आप पैदा हुए है और जबतक आप इस भूतल को सुशोभित करते रहेंगे, तबतक जितने सुकृत आपने किये हैं उन पुण्यकर्मों का फल सदा के लिए ध्वस्त हो जायगा, यदि आप इस प्रजावर्ग के रक्षण से तनिक भी विचलित होगे। और राजा ने अपने उत्तरदायित्व का पूरा विचार करते हुए उस प्रतिज्ञा को गम्भीर मुद्रा मे दुहराया था। इस प्रकार पुरूरवा प्रजाओ की नाना कामनाओ के प्रतीक थे। उन्हे पाकर प्रतिष्ठानपुर की प्रजा आनद से फूल उठी थी। राजा उनके हितसाधन मे सलग्न था और प्रजामडली

अपने महीपति के कल्याण-साधन मे जी-जान से जुटी थी।

पुरूरवा की कीर्तिकौमुदी ने इस भूतल को ही अपनी प्रभा से धवलित तथा स्निग्ध नही बनाया था, प्रत्युत वह स्वर्गलोक के प्रत्येक स्थान मे प्रतिविम्वित हो उठी थी। अमरावती के अमराधिप महाराज इद्र के निमत्रण पर राजा स्वय उनकी सभा मे उपस्थित होते थे और अपने मुख कमल की स्निग्धता से अमर ललनाओ के हृदय मे भी लालसा के रस का सचार करते थे। उस दिन स्वर्गलोक की अनुपम सुषमा और कला उर्वशी के रूप मे प्रकट हुई थी। उर्वशी स्वर्गलोक की मधुमय शृ गार थी और स्वर्ग-साम्राज्य के लोलुप तापसो को गतव्यपथ से दूर हटानेवाला सुकुमार अस्त्र थी। जिन साधको के ऊपर हिंसा की आशका से देवराज अपने वज्र को चलाने मे कुठित होते थे, उनके ऊपर नि शक भाव से इस ललाम ललना अस्त्र का प्रयोग कर वे अपने मनोरथ को अनायास सिद्ध कर लेते थे। इद्रपुरी के विशाल प्रासाद मे उस रात को ऊर्वशी का अभिराम अभिनय होने वाला था। आकाश मे सुधाधर अपनी सोलहो कलाओ से चमक रहा था। उसकी सुधामयी ज्योत्स्ना समग्र अमरावती को रस-स्निग्ध वना रही थी। अप्सरा-मणि उर्वशी के शरीर से प्रकाश का फौवारा फूट रहा था। कला ने उसकी वेश-भूषा को अपनी ओर से इतनी स्वाभाविक अभिरामता प्रदान की थी कि दर्शको के नेत्र जिस अग पर जम जाते थे वहा से हटने का नाम न लेते। उर्वशी के शरीर मे यौवन की स्निग्धता थी और उसके गायन मे कठोर हृदय को भी रसमय वना देने की शक्ति। गले में एक विचित्र लोच था, भाव प्रकट करने मे हाथो मे विचित्र विन्यास-चातुरी थी। देवराज की सभा आनद के

झकोरे में मस्त झूम रही थी। राजा पुरूरवा का हृदय हर्ष के हिलोरे पर चढा आदोलित हो रहा था। उर्वशी और पुरूरवा की आखें चार हुईं। हृदय ने अपनी गूढ वेदना को नेत्र के झरोखे से प्रकट किया। हृदय ने हृदय को पहचाना। मानव अप्सरा के प्रेम के लिए बेचैन बन गया।

राजा ने उर्वशी से देवलोक को छोडकर मानवलोक मे चले आने का प्रस्ताव किया—यह स्वर्गलोक निरवच्छिन्न भोग-विलास की एक दीर्घ परम्परा है, सदा एक रग, सदा एक रस, सर्वत्र मधुरिमा, सर्वत्र वसत का उन्मादक रूप ! भला, इसमे कही सच्चे आनद का अनुभव मिल सकता है ? विषाद की अनुभूति के बिना हर्ष की प्रचुरता का बोध नही होता। विरह की वेदना को बिना जाने सयोग की रसमाधुरी फीकी जान पडती है। हमारे मर्त्यलोक में विचित्रता का राज्य है, उसमें एकरसता नही। आज दु ख के आसू बहते हैं तो कल सुख के आसू वरसते हैं। हर्ष-विषाद, सुख-दु ख, सपत्-विपत् का यह अनोखा मेल मर्त्यलोक की विशेषता है। अप्सरा ने राजा की मीठी बातें सुनी। वह स्वर्ग की एकरसता से ऊब गई थी और मानव के साथ प्रेम-गाठ बाधना चाहती थी और मर्त्यलोक की विचित्रता का आस्वाद लेना चाहती थी, परंतु उसने राजा के सामने तीन शर्तें रखी—वह सदा घृत का ही अहार किया करेगी, उसके प्यारे दोनो मेष सदा उसकी चारपाई के पास बधे रहेगे, जिससे कोई उन्हे चुरा न सके, और तीसरी बात सबसे विकट थी कि यदि वह राजा को किसी भी अवस्था मे नग्न देख लेगी तो वह एक क्षण मे वहा से गायब हो जायगी। राजा ने शर्तें मान ली। मानव तथा दिव्यागना का प्रथम समागम संपन्न हुआ।

प्रतिष्ठानपुर की प्रजा अपनी साम्राज्ञी के दर्शन से आनदित हो गई।

२

उर्वशी की आनन चद्रिका के अस्त होते ही देवलोक विषाद के गाढ अन्धकार मे डूब गया। नन्दनवन मे वसत आया, परन्तु लताओ ने विकसित सुमनो से उसका स्वागत न किया। रसाल वृक्षो मे मजरी लगी परतु उसमे सरसता न थी। कोकिल बोलती थी, परतु उसकी काकली मे कलकठ कामिनियो को लजाने की योग्यता न रही। माधवी लता के साथ दक्षिण पवन अठखेलिया करने का साहस करता, पर इसमे जीवन न था। जलाशयो मे खिले कमलो पर रसलोभी मधुप अपना मधुर गुजार करते, परतु उसमे रसिको के हृदयो को खीचने की शक्ति जाती रही। मधु था, परतु मादकता न थी। उर्वशी स्वर्गलोक की प्राण थी। उसके हटते ही वह मजुल देश नि सार, निर्जीव तथा नीरस बन गया। गधर्वों से यह दृश्य देखा न गया। उर्वशी को मर्त्यलोक से लौटा लाने का उपाय निकाला गया। मध्यरात्रि को गन्धर्व लोग एक मेष को महल से चुराकर आकाश मे ले गये, उसकी करुण पुकार उर्वशी ने सुनी और सहायता के निमित्त चिल्लाकर रोने लगी। परतु राजा एकदम चुप था। दूसरे मेष की आवाज सुनते ही अपनेको निराश्रय, निरालब तथा अनाथ कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। राजा उन्मत्त-सा हो गया और अपनी नग्नता पर बिना ध्यान दिये वह गन्धर्वों के पीछे दौड पड़ा। वे लोग तो इसी अवसर की प्रतीक्षा मे थे ही। उस कालिमा मे बिजली एक बार चमक उठी। राजा का विवस्त्र शरीर अप्सरा की आखो के सामने

प्रकट हो गया। प्रतिज्ञानुसार वह उसी क्षरण अन्तर्हित हो गई। मेषो को वापस लाकर पुरुरवा विजय लक्ष्मी के पाने से प्रसन्न-वदना अप्सरा के स्वागत का अभिलापी था, पर वहा सूनी सेज ने अपने विकट हास्य से उसका अभिनन्दन किया। देवागना के वियोग से मानव व्याकुल हो गया।

३

कुरुदेश मे एक रमणीय जलाशय था। स्फटिक के समान निर्मल जल चमक रहा था। पानी की बूदे मोती के समान दर्शको के नेत्रो को स्निग्ध वनाती थी। उसमे नाना रगो के रग-विरगे कमल वायु के झोको से झुक-झुककर अपना सौरभ चारो ओर बिखेर रहे थे। उसमे पाच श्वेतकाय हसी कमलपत्रो की छाया मे ललित क्रीडाए कर रही थी।

उर्वशी की खोज मे पुरुरवा उसी तडाग के पास पहुचा। हसियो को देखते ही उसने अपनी प्रियतमा को पहचान लिया। प्रेम का प्रभाव ही विचित्र होता है। सच्चे प्रेमियो का हृदय वाहरी आवरण को हटाकर तुरत एक दूसरे को पहचान लेता है। हसी का आकार धारण करने पर भी उर्वशी को अपने प्रियतम को पहचानते देर न लगी। दोनो अपने हृदय की भावना शब्दो के द्वारा प्रकट करने लगे —

पुरुरवा—हे प्रियतमे, मैं कभी नही जानता था कि तुम्हारा हृदय इतना कठोर है। जहा मैं रत्न पाने की आशा रखता था, वहा मुझे जलता हुआ अगारा ही हाथ आया। आओ, तुम्हारे कोमल शब्दो को सुनकर मै अपना हृदय तृप्त करू।

उर्वशी—अब वातचीत करने से क्या लाभ? उपाओ के बीच पहली उपा के समान मैं तुम्हारे पास से तुरत भाग खडी

हुई। घर लौट जाइये। मेरा पाना उतना ही कठिन है जितना वायु को पकडना।

पुरुरवा—तुम्हारे चले जाने का मुझे सचमुच वडा दु ख है। तरकस से निकले हुए बाण की भाति तथा विजय के लिए सग्राम मे दौडनेवाले वाजि की तरह तुम मेरे महल से झट चली आई हो। यह सारा काम गधर्वों की माया थी। उन्होने विपत्ति मे पडे हुए मेषो के चिल्लाने की आवाज स्वय की थी। विजली का चमकना भी गहरा धोखा था। उन लोगो ने सजग होने पर भी हमे ठगा है।

उर्वशी—प्रिय, मैं आपके उन प्रेममय आलिगनो को कभी नही भूल सकती। मेरे साथ वह स्निग्ध व्यवहार, प्रतिदिन तीन वार आलिगन, सदा घृत भोजन की व्यवस्था—सवकुछ मेरे आनद के लिए था। मैंने आपकी इच्छा के आगे अपना समर्पण किया था। आप मेरे शरीर के अधिपति थे।

पुरुरवा—सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्नेआपि, ह्रदेचक्षु, ग्रथिनी, चरण्यु—इन देवागनाओ का कपट मैं कभी भूल नही सकता। ये विजली की चमक ठहरी, जिनके द्वारा मैं अपने प्यारे मेष का उद्धार करना चाहता था, परन्तु ये तो वडी कपटी निकलीं। लाल रग की गायो के समान ये मुझसे भाग गई और अपने वछडो के लिए रभानेवाली धेनुओ की तरह गडगडाने का घन-घोर शव्द करने लगी।

उर्वशी—आपके ऊपर देवताओ की महती अनुकम्पा है। दस्युओ के मारने के लिए आपका जन्म हुआ है, परतु अप्सरा की आसक्ति ने आपको कर्तव्यच्युत वना दिया।

पुरुरवा—विल्कुल ठीक। मानव अप्सरा के लिए सर्वस्व

अर्पण करने को तैयार रहता है, परतु ये अप्सराए मानव के प्रेम का तिरस्कार करती हुई उसी प्रकार भाग जाती है जिस प्रकार मृगी तथा रथ मे जोता गया घोडा ।

उर्वशी—इसमे आश्चर्य क्या है ? मर्त्य इन अमर्त्य ललनाओ को अपना हृदय क्यो बेंचता है ? ये उन हसियो के समान हैं जो अपना सुदर रूप दिखलाकर प्राणियो को लुब्ध करती है और क्रीडा करने वाले घोडो की तरह अपना खेल दिखलाकर भाग खडी होती हैं ।

पुरूरवा—अच्छा मुझे अपने कार्यों पर आप ही ग्लानि होती है । मै उस दिन की प्रतीक्षा मे हू जब तुम्हारी गोदी को मेरा पुत्र भरेगा और अपनी मद मुसुकान से तुम्हारे घर को आनन्दित करेगा ।

उर्वशी—आप उसके लिए चिन्तित मत होइये । मैं स्वय उसकी आखो से आसुओ को पोछकर उसे प्रसन्न करूंगी । मेरी सेवा के आगे वह आपकी तनिक चिता न करेगा ।

राजा को उर्वशी के ये वचन वडे ही निष्ठुर प्रतीत हुए । वह तो प्रेम का भिखारी ठहरा । उर्वशी के आगे स्थायी प्रेम की भिक्षा मागने आया था, परतु उसे मिला केवल उपालम्भ । उसने आत्महत्या करने का निश्चय किया, जिससे ससार की झझटो से सदा के लिए दूर हटकर वह प्रकृति की गोद मे सुख की नीद सो जाय । इस विचार को सुनते ही उर्वशी एक वार चौंक पडी और सदयभाव से वोल उठी, "तुम्हारा यह आचरण निताात गर्हित है । भला, यह भी किसी सत्पुरुप का काम है, "आत्महता की वडी दुर्गति होती है । वह उन लोको मे जाता है जहा सूर्य की किरणें कभी नही चमकती और

जह घना अधकार अपना प्रभाव सदैव जमाये रहता है। तुम स्त्रियो के चरित्र से परचित नही हो। उनके साथ कभी मित्रता हो ही नही सकती, क्योकि उनका हृदय भेडिये के हृदय की तरह क्रूर तथा कुटिल हो जाता है।

४

पुरुरवा प्रेम की परीक्षा मे उत्तीर्ण हो गया। उसकी प्रेमिका ने उसे उस मार्ग से दूर हटने के लिए स्वय आग्रह किया। स्त्री-प्रेम की पर्याप्त निंदा की, परतु राजा अपनी प्रतिज्ञा से डगभर भी नही हटा। गधर्वों से राजा की दीन दशा अब अधिक न देखी गई। उन्ही लोगो ने तो उसे प्रेम से वञ्चित किया था। राजा का प्रेम नितात विशुद्ध, उन्नत तथा उदात्त था, तभी तो वह उर्वशी के वाक्-प्रहारो की चोट सहकर भी विचलित नही हुआ। गधर्वों को दया आई। उन्होंने राजा को हाथ मे अग्निस्थाली रखकर तपस्या तथा याग करने की आज्ञा दी। राजा ने उनके उपदेश को मान लिया।

राजधानी की ओर आते समय उसे एक वीहड जगल से होकर पार जाना था। उसे कुछ वैराग्य उत्पन्न हो गया। सोचा—सामने रहकर भी उर्वशी वशीभूत न हुई, तो यज्ञ के अनुष्ठ न से वह अपना हृदय मुझे देगी, इसकी मुझे तनिक भी आशा नही है। राजा ने उस अग्निस्थाली (अग्निपात्र) को उसी जगल मे छोड दिया। घर आने पर अपनी करतूत पर उसे लज्जा आई। व्यर्थ ही एक परीक्षित दैवी उपाय को हाथ मे जाने दिया।

प्रात काल हुआ। तुरत वह अकेला ही उस जगल मे पहुचा, जहा उसने वह अग्निस्थाली रख छोडी थी। पर अग्नि शात

था। केवल पीपल तथा शमी के वृक्ष अपनी सघन पत्तियो को हिलाते हुए खडे थे। राजा इन दोनो की शाखाए अपने साथ लाया और अग्निमथन कर अग्नि को उत्पन्न किया। यज्ञ के लिए एक अग्नि को उसने तीन अग्नियो के रूप मे विभक्त किया—आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि। यज्ञ के विधि-वत् अनुष्ठान से फल तुरत मिला। पुरुरवा को उर्वशी का मधु-मय सगम सदा के लिए प्राप्त हो गया।

तभी से त्रेता अग्नि (यज्ञ की तीन प्रकार की अग्नि) की प्रतिष्ठा इस लोक मे हुई। पुरुरवा इस लोक मे त्रेता अग्नि के प्रथम सस्थापक है।

: १० :

अधिकार का रहस्य

१

प्राची क्षितिज पर भगवान् भास्कर की सुनहली किरणे जगत् के ऊपर एक स्वर्णमयी आभा फैला रही थी। समीर मद गति से वह रहा था। क्यारियो मे उगे नाना रग के फूल धीरे-धीरे झुक-झुककर प्रभात का स्वागत कर रहे थे। तपोवन की शोभा निखरी हुई थी। वृक्षो के पत्तो का धूमिल रग यागधूम के अनवरत विस्तार की शुभ सूचना दे रहा था। महर्षि दध्यङ् आथर्वण प्रात काल के इस सुहावने दृश्य को उत्फुल्ल लोचनो से देख रहे थे। उनकी दृष्टि मे अतृप्ति का भाव झलक रहा था। भविष्य की किसी आकस्मिक घटना की छाया उनके आनदमग्न मुखमडल के ऊपर चिता की विषादमयी रेखा धीरे-धीरे खीच रही थी। इतने मे उनकी दृष्टि एक आगतुक के ऊपर जाकर ठिठक रही। वे उस आश्रम के कुलपति थे। दश सहस्र विद्यार्थियो को विद्या-दान देते थे। वे प्रत्येक छात्र के नाम तथा काम से पूरे परिचित थे। इसी मडली मे एक अपरिचित व्यक्ति को देखकर उनका आश्चर्य सीमा को पार कर गया। उस आगतुक से उन्होने गभीर स्वर मे पूछा, "आप कौन हैं ?"

"मैं एक जिज्ञासु अतिथि हू।" आगतुक ने उत्तर दिया।

"इस तपोवन मे आपके आगमन का क्या प्रयोजन ?"

"इस प्रश्न का उत्तर मैं अभी दूगा। कृपया अतिथि के मनो-

रथ को पूर्ण कर देने की आप प्रतिज्ञा कर द।"

महर्षि ने अपनी स्वीकृति दे दी। आगतुक अपना परिचय तथा प्रयोजन की बातें कहने लगा, "महर्षे! मैं देवताओं का राजा इद्र हू। मैंने आपकी विद्वत्ता की बाते पहले से सुन रखी हैं। आपके समान ब्रह्मवेत्ता इस भूतल पर नही है। परम-तत्त्व के साक्षात्कार के कारण आपका जीवन धन्य है। इतने विद्यार्थियो को आप नाना शास्त्रो की शिक्षा देकर जगत् का मगल-साधन कर रहे है। उस परमतत्त्व के स्वरूप को भली-भाति समझने की जिज्ञासा मुझे स्वर्गलोक से इस भूतल पर खीच लाई है। इस गूढ रहस्य की शिक्षा देकर मुझे कृतकृत्य बनावें तथा देवराज को अपना शिष्य बनाकर स्वर्लोक मे भी आप अपनी कीर्ति का विस्तार करें।

दध्यङ् आथर्वण का चित्त चचल हो उठा। उनके सामने एक विषम समस्या आ खडी हुई। अतिथि के मनोरथ को पूरा करने की उन्होने पहले ही प्रतिज्ञा कर रखी थी, इसके निर्वाह न करने से सत्य-व्रत का भग होगा और यदि इद्र को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करते है, तो अनधिकारी को शिक्षा देने का दोष गले पडता होता है।

२

अधिकार का प्रश्न बडा विषम हुआ करता है। शास्त्र के सरक्षण, विद्या के सदुपयोग के लिए ही अधिकारी की व्यवस्था की गई है। योग्य व्यक्ति को शिक्षा देने पर ही वह शिक्षा फलवती होती है, अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक सभावना वनी रहती है। यही कारण है कि प्राचीन काल मे विद्वान् गुरुजन अधिकारी शिष्य की खोज मे अपना जीवन विता

देते थे। विना अधिकारी पाये वे अपने शास्त्र का रहस्य किसी भी व्यक्ति को नही देते थे। ब्रह्मज्ञान के उपदेश से बढकर दूसरा उपदेश हो ही क्या सकता है ? उसके निमित्त साधनचतुष्टय से सपन्न व्यक्ति की वडी आवश्यकता है। जो व्यक्ति नित्य तथा अनित्य वस्तु के विवेक को जानता है, जिसे इस लोक तथा पर-लोक के भोगो मे सच्चा वैराग्य है, जिसने इद्रियो तथा मन के ऊपर पूरे तौर से विजय पा ली है वही प्रपच से मुक्ति का अभिलाषी साधक इस उच्च उपदेश के रहस्य को सुनने का अधिकारी होता है। परतु क्या इद्र मे ये गुण है ? जिसके हृदय को कामवासना ने अपने अधिकार मे कर रखा है तथा शत्रु को अपने अदम्य वज्र से मार भगाना ही जिसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, भला उस व्यक्ति के अशात हृदय को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा क्योकर शाति प्रदान कर सकती है ? इस उच्चतम उपदेश का वह कथमपि अधिकारी नही है।

दध्यङ् आथर्वण की विचार-धारा इसी प्रकार प्रवाहित हो रही थी, परतु अपनी प्रतिज्ञा के पालन के उद्देश्य को सामने रख-कर उन्होने इद्र को मधुविद्या का उपदेश देकर यह कहना आरभ किया, "भोग की लिप्सा प्राणी के हृदय मे उसी प्रकार अनर्थ-कारिणी है जिस प्रकार फूलो के समूह मे छिपी हुई सापिन। योगमार्ग का आश्रय लेने के लिए भोग का वहिष्कार करना ही पडेगा। स्वर्गभूमि का वह अनुपम भोग भी किस मतलव का ? नदनवन की वह सुगमता, स्वच्छ फेन के समान रमणीय शय्या नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोज्य-पदार्थ—इनके सेवन से भला कभी हृदय मे सतोप का उदय हो सकता है ? श्रेय और प्रेय का मार्ग परस्पर विरोधी है। प्रेय का अवलम्वन सदा अनर्थ-

कारक तथा क्षणभगुर है। श्रेय का ही अवलम्बन कल्याण-कारक मार्ग है। भोग की लिप्सा के विचार से देवताओ के अधिराज इद्र तथा भूतल के निकृष्ट पशु कुत्ते मे क्या कुछ अतर है? इस दृष्टि से दोनो एक समान है। इस भोग—आसक्ति—के भाव को हृदय से दूर कीजिए, तभी नि·श्रेयस की उपलब्धि हो सकती है।"

इन वचनो को सुनकर देवराज का क्रोध अपनी सीमा को पार कर गया। उन्होने स्वप्न मे भी न सोचा था कि कोई भी व्यक्ति उनकी समता कुत्ते से करेगा। कहा उसका नितात उत्कृष्टपद! और कहा इतनी भद्दी तथा अनुचित समता! देव-पद का इतना घोर तिरस्कार! महर्षि के इन अपमानसूचक शब्दो का सुनना उसके लिए असह्य हो उठा। वे उन्हे मार डालने के लिए उद्यत हो गये, परतु उन्हे अपना ज्ञानो-पदेशक मानकर अपने विचार को दवा देना पडा। वे आतरिक क्रोध को अधिक देर तक छिपा न सके। बोले, "यदि आप इस विद्या का उपदेश किसी भी अन्य व्यक्ति को करेंगे, तो समझ रखिये, आप अपने धड के ऊपर इस सिर को न पावेंगे। आपका सिर धड़ से पृथक् पृथ्वी पर लोटता दीख पडेगा।"

दध्यङ् आथर्वण ने शातमन से इस अभिशाप को सुना। चिकने घडे के ऊपर पानी के समान इन वचनो का प्रभाव उनके ऊपर तनिक भी न पडा। इद्र के विस्मय का ठिकाना न था। ब्रह्मज्ञानी आथर्वण हिमालय के समान अडिग खडे रहे। तुमुल झझावात जिस प्रकार पहाड के ऊपर नितात निराश्रय तथा शक्तिहीन हो जाता है, उसी प्रकार इद्र का क्रुद्ध वचन महर्षि के चित्त को विचलित न कर सका।

शान्ति का यह दृश्य जगत् के मानवों को चकित करने लगा।

३

'महर्षे, इस वार हमारा आग्रह आपको मानना पडेगा।" अश्विनीकुमारो ने विनयभरे शब्दो मे कहा।

"कौन-सा आग्रह ?"

"वही जिसे अधिकारी को देने की आपने प्रतिज्ञा की है-- मधुविद्या का उपदेश।"

"उस विद्या के ग्रहण करने की पात्रता क्या आप लोगो मे आ गई है ?" दध्यड् आथर्वण ने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ, सत्य तथा तप का साधक व्यक्ति ही आपकी दृष्टि मे इस अनुपम विद्या के पाने का उपयुक्त अधिकारी है। हम लोगो ने कठिन तपस्या कर अपने हृदय से हिंसा तथा कामवासना को सदा के लिए दूर कर दिया है। परोपकार हमारे जीवन का मूल मत्र है। महर्षे, आप से हमारे जीवन की प्रधान घटनाए छिपी नही हैं। इन्द्र ने स्वेच्छाचार से हमे सोमयाग मे सोमपान के लिए नितरा अयोग्य ठहराया था। हमारे हृदय मे भी प्रतिहिंसा की आग जल रही थी, जो अपनी लपट से देवराज को भुलसा देने के लिए पर्याप्त थी। परतु हम लोगो ने इस वृत्ति को दवाकर उपकार-वृत्ति को ही आश्रय दिया। कितने पगुओ को हमने चलने की शक्ति दी और कितने अधो को देखने की क्षमता। कितने जराजीर्ण व्यक्तियो के शरीर से वुढापे का कलक हटाकर उन्हे नवीन यौवन प्रदान किया है। उन महर्षि च्यवान को आप भूले न होंगे। शर्याति मानव की पुत्री सुकन्या के साथ उनका विवाह अवश्य हो गया था, परतु वृद्धावस्था के कारण उनका जीवन दूभर हो गया था। उन्हे हमने नवयौवन प्रदान किया है। उनके

जीवन मे वसत का उदय हो गया, जीर्ण देहलता उल्लसित हो गई। इसीके प्रत्युपकार मे ऋषि च्यवान ने हमे सोमपीथी बना दिया है। आपने जिन गुणो को आवश्यक बतलाया था, उन्हे हमने सम्पादन कर लिया है। अब आप हमे मधुविद्या के रहस्य का उपदेश दीजिये।"

दध्यड् आथर्वण के सामने एक विषम समस्या उपस्थित हो गई। अधिकारी व्यक्ति को प्रतिज्ञात उपदेश से वचित रखना महान् अपराध होगा, परतु इद्र के अभिशाप को भुला देना भी घोर अपराध था। एक ओर थी जीवैषणा की स्वार्थमयी वृत्ति और दूसरी ओर थी ब्रह्मविद्या के प्रचार की उपकारमयी प्रवृत्ति। महर्षि के मन मे यह द्वद्व सग्राम कुछ देर तक अपना छल-बल दिखला रहा था। परतु ऋषि के जीवन मे ऐसे अवसर कितनी बार आये थे और कितनी ही बार उन्होने परमार्थ की वेदी पर अपने स्वार्थ को समर्पण करते विलम्ब न किया था। भला, ब्रह्मवादी को इस शरीर की ममता तनिक भी विचलित कर सकती है? पानी के बुलबुले के समान इस जीवन का अस्तित्व ही कितना! आज है, कल गायब, नदी के प्रवाह मे बहते हुए दो काष्ठ-खण्ड एक साथ मिल जाते हैं, कुछ देर तक साथ-साथ चलते हैं, परतु अत मे विच्छिन्न होकर अलग-अलग बह जाते है। जीवन की भी दशा ठीक इसीके समान है।

× × ×

महर्षि ने अपना निश्चय सुना दिया। अश्विनीकुमार का हृदय इस सुखद समाचार के श्रवणमात्र से तृप्त हो गया, परतु जब महर्षि ने इन्द्र के अभिशाप की चर्चा की, तब उनके प्रसन्न मुखमडल पर विस्मय और विषाद की रेखाए बारी-बारी से दौड

चली—विषाद, इद्र के समान देवता के इस चरित्र पर और विस्मय, दध्यड् आथर्वण के उदात्त परोपकारपरायण जीवन पर। इन्होंने ऋषि से अपने एक विचित्र कौशल का परिचय दिया। अश्विनीकुमार को सजीवनी विद्या आती थी। इसके वल पर वे छिन्न-भिन्न अग को भी धड़ से जोड कर उसे चेतन और सजीव वना सकते थे। इस विद्या के प्रयोग करने का अवसर पाकर वे नितांत प्रसन्न हुए। उन्होने महर्षि से अनवरत आग्रह किया कि हम लोग आपके सिर को धड से अलग कर उसके ऊपर घोडे का सिर वैठा देंगे। आप उसी से हमे मधु-विद्या का उपदेश करें। यदि वह सिर इद्र के क्रोध का भाजन वन अपना अस्तित्व खो वैठेगा, तो हम आपके असली सिर को धड से जोड देंगे। आपकी प्राणहानि भी न होगी और हमारी वर्षों की साधना पूरी हो जायगी। दध्यड् आथर्वण की स्वीकृति का क्षणिक विलव था। उस प्रस्ताव को महर्षि ने स्वीकार कर लिया, अश्विनीकुमार ने उनके असली सिर के स्थान पर घोडे का सिर वैठा दिया।

इस शल्यकर्म की निपुणता संसार के प्राणीमात्र के लिए एक कौतुकजनक व्यापार थी। इसे देखकर ससार आश्चर्य से चकित हो उठा। ऋषि ने मधुविद्या के रहस्य को इन देवताओं को भली-भाति समझाया—

"इस जगत् के समस्त पदार्थ आपस मे एक दूसरे के उपकारक हैं—स्थूल पदार्थ से लेकर सूक्ष्म पदार्थ तक में यह परस्पर उपकार्योपकारकभाव एक रूप से अनुस्यूत दिखलाई पडता है। यह पृथिवी सव प्राणियो के लिए मधु है तथा सव प्राणी इस पृथ्वी के लिए मधु हैं। इस पृथ्वी मे रहनेवाला तेजोमय तथा

अमृतमय पुरुष विद्यमान है। ये दोनो समग्र पदार्थों के उपकार करनेवाले हैं। अत ये मधुरूप हैं तथा समग्र पदार्थ इनके लिए मधु है। जल, अग्नि, वायु, आदित्य, दिशा, चद्र विद्युत्, मेघ, आकाश—इन समग्र पदार्थों के विषय मे भी यही नियम क्रिया-शील है, धर्म और सत्य भी इसी प्रकार जगत् के परस्पर उप-कारक होने से मधु हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि समग्र वर्णों का नियामक धर्म ही है। श्रुति-स्मृति से अनुमोदित धर्म का विना पालन किये प्राणी अपनी स्थिति निश्चित नही रख सकता है और न अपना उदय प्राप्त कर सकता है। धर्म के लिए समस्त प्राणी मधुरूप हैं। सत्य की भी यही दशा है। यह विशाल विश्व सत्य के आधार पर अवलम्बित है। सत्य के आश्रय के अभाव मे यह ससार न जाने कब का ध्वस्त हो गया होता! सूर्य सत्य के बल पर भूतल के अन्धकार का नाश करता है, चद्रमा सत्य के ही बल पर सतप्त ससार को अपनी सुधा-धवल किरणो से शीतल बनाता है। यह सत्य सब प्राणियो के लिए इस प्रकार उपकारक होने से मधु है और सब प्राणी भी इस सत्य के लिए मधुरूप हैं। इस प्रकार यह परस्पर उपकार्य-उपकारक इस विश्व के कण-कण मे व्याप्त है—सर्वत्र गति-शील है।

"हे नासत्यो, आप लोग इस नियम से अपरिचित नही है कि जो वस्तु एक दूसरे का उपकार करनेवाली होती है, वह किसी एक कारण के द्वारा उत्पन्न होती है, एक मूल स्रोत से प्रवाहित होती है, उसका सामान्य रूप एक समान है तथा उसके प्रलय होने का स्थान भी एक ही है। इस विश्व की यही दशा है। इसके मूल मे परमात्मा है। अविद्या के आश्रय से इस जगत् की

सत्ता है। ज्ञान के उदय होते ही यह विश्व परमात्मा मे उसी भाति लीन हो जाता है, जिस प्रकार दीप के प्रकाश से रस्सी मे झूठा प्रतीत होनेवाला सर्प छिप जाता है। उस नित्य परमात्मा को, इस विश्व के सूत्रात्मा को, अपनी बुद्धि से पकडना चाहिए। वह सब भूतो का अधिपति है, स्वतत्र राजा है। इस ब्रह्म को जाननेवाला पुरुष इस दु खमय प्रपच से मुक्त हो जाता है। ठीक जिस प्रकार रथ की नेमि मे सब अर जुडे रहते हैं, उसी प्रकार इस परमात्मा मे और ब्रह्मविद् पुरुष मे सब प्राणी, सब देवता, सब लोक, सब प्राण और सब मनुष्य समर्पित हैं। इस परमतत्त्व को पहचानना जीवन की मुक्ति का प्रधान उद्देश्य है। विश्व के भीतर क्रियाशील तत्त्व साक्षात्कार कर अपने जावन को धन्य बनाइये।"

महर्षि दध्यड् आथर्वण ने प्रसन्न-वदन होकर स्वानुभूत मधुविद्या का उपदेश अश्विनीकुमार को दे डाला। ब्रह्मवादी आचार्य के वचन सुनकर शिष्य की कामनावेलि लहलहा उठी। शरीर हर्ष से कण्टकित हो उठा। वर्षो की साधना अतत. सफल हुई।

५

पात्र की भिन्नता के कारण एक ही कार्य के अनेक फल दीख पड़ते है। मधुविद्या का उपदेश अश्विनीकुमार के असीम हर्ष का साधन था, परतु इद्र के हृदय मे यही विशेष क्रोध का कारण बन गया। अभिमानी इद्र को यह बात बडी बुरी लगी कि महर्षि ने उनकी आज्ञा का उल्लघन कर दिया है। वे नहीं जानते थे कि ब्रह्मवादी की दृष्टि मे इस देह का मूल्य कानी कौडी से भी कम है। वे देवताओ मे सर्वश्रेष्ठ थे। भला, एक

मनुष्य का इतना साहस कि वह उनकी स्पष्ट आज्ञा की इस प्रकार जान-बूझकर अवहेलना करे। गर्व का नशा बडा ही प्रभावशाली होता है, वह विवेक को उसी प्रकार चूरमूर कर डालता है जिस प्रकार मतवाला हाथी दृढमूल वृक्ष को। इद्र ने अपना वज्र सम्हाला और ऋषि के मस्तक के ऊपर तीक्ष्ण प्रहार किया। देखते-देखते क्षण भर मे आथर्वण का सिर भूतल पर लोटने लगा। अनाधिकारी शिष्य को उत्तम विद्या के दान का फल खूब मिला।

उधर अश्विनीकुमार को इस बात की खबर लगी। उन्होने अपनी प्रतिज्ञा के पालन मे क्षणभर भी विलम्ब न लगाया। अपने आचार्य की सहायता करने के लिए वे दौडे हुए आये और उन्हीको उपदेश देने के कारण गुरू की यह दुरवस्था देखकर उनके विषाद तथा विस्मय की सीमा न रही। विषाद था अभिमानी इन्द्र की करतूत पर और विस्मय हुआ ब्रह्मज्ञानी दध्यड् आथवर्ण की असीम सहनशीलता पर। एक अक्षर के भी उपदेष्टा गुरु के प्रति शिष्य को अपना आदर प्रदर्शित करना शास्त्र का माननीय मत है, परतु मधुविद्या जैसे रहस्य के उद्घा-टन करने वाले आचार्य के प्रति शिष्य का इतना कुत्सित वर्ताव ? परतु इतनी विपम स्थिति मे भी महर्षि के उदार हृदय मे क्रोध के लिए तनिक भी स्थान न था। इद्र के लिए उनके चित्त मे क्षमा का अखण्ड स्रोत विराजमान था। क्रोधवश शिष्य ने कुकर्म कर डाला, तो क्या वह क्षतव्य नही होता ? आखिर शिष्य ही तो ठहरा। महर्पि इसी विचार मे मग्न थे कि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सत्य के उपासक नासत्यो ने अपने मीठे सहानुभूतिपूर्ण शब्दो से वचसा ही ऋपि के चित्त

का आनदमग्न नही कर दिया, किंतु कर्मणा भी। उन्होने उस असली मस्तक को जिसे उन्होने काटकर अलग रखा था, ऋषि के धड से जोड दिया। ऋषि का आनद वैखरी का रूप धारण कर तुरत प्रकट हो चला। अश्विनीकुमार के इस अचरजभरे कार्य को देखकर जनता विस्मित हो उठी। लोगो ने अधिकारी शिष्य को दी गई विद्या के महत्त्व को तभी पहचाना।

६

"महर्षे, क्षमा करना मेरे गुरुतर अपराध को।"

"कौन-सा अपराध, देवराज ?"

"शिष्य के हाथो अपने ही विद्योपदेष्टा आचार्य का मस्तक छेदन।" अधोमुख इद्र ने लज्जा-भरे शब्दो मे कहा।

"मेरे हृदय मे आपके इस कृत्य से तनिक भी क्षोभ नही है। मैं अनधिकारी की विद्यादान से उसी समय पराङ्मुख हो रहा था, परतु आपके आग्रह तथा अपनी सत्यनिष्ठा के कारण ही मैंने आपको इसका उपदेश किया था। परतु ब्रह्मज्ञानी के चित्त को ऐसे कार्यो मे तनिक क्षोभ नही होता।" दध्यड् आथर्वण ने प्रेमभरे शब्दो मे अविचल रूप मे उत्तर दिया।

"यह आपकी उदारता है कि आप मुझे क्षमा कर रहे हैं, अश्विनीकुमार के इस कार्य को देखकर मेरा अभिमान अकस्मात् विलीन हो गया है। एक समय था जब मैंने ही इन्हे सोमयाग मे सोमपान का अनाधिकारी ठहराकर बहिष्कृत किया था, परतु आज इनकी असीम गुरुभक्ति तथा अद्भुत शल्यकर्मचातुरी देखकर मेरा हृदय पानी-पानी हो रहा है। सजीवनी विद्या का ऐसा सुदर दृष्टात इस भूतल पर अभूतपूर्व है।" इद्र ने अपना निराभिमान हृदय प्रकट किया।

"हा, अधिकारी को विद्यादान का यही रहस्य है। जिसके हृदय को अभिमान की आग जला रही हो, भला उसके हृदय मे किसी उपदेश के टिकने का अवसर मिल सकता है? पाकशासन, शास्त्र का अधिकारी-भेद से विद्यादान का उपदेश बडा ही महत्त्व रखता है। पात्र के औचित्य पर ही विद्या फलवती हो सकती है। पामर जन मोतियो का मूल्य क्या समझेगा? उसका मूल्य तो नगर का जौहरी ही समझ सकता है। विद्या का रहस्य गूढ है। अनधिकारी व्यक्ति उस दुधारी तलवार की भाति है जो दूसरे को मारकर अपने चलानेवाले व्यक्ति का भी नाश कर डालती है। इस विपय मे जागरूक रहने का आग्रह तिरस्करणीय नही है।"

आचार्य के इन प्रेमभरे शब्दो ने इद्र की कलुषित चित्तवृत्ति को सदा के लिए बदल दिया। वृत्र तथा शम्वर जैसे दासो के प्रवल अविपधियो के आकस्मिक आक्रमण के अवसर पर इद्र ने भौतिक सहायता के लिए भी महर्पि आथर्वण का आश्रय लिया और उन्हीके उपदेशानुसार उन्होंने कुरुक्षेत्र के पास 'शर्यणा' नामक जलाशय से उस घोडे के सिर को ढूढ निकाला जिसे इद्र ने ही कभी काट गिराया था। महर्पि के द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश इसी मुख के द्वारा सपन्न किया गया था। वह नितात कठोर, सारयुक्त तथा पुष्ट वन गया था। ऋपि के उपदेशानुसार उसी-से इद्र ने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र तैयार किये और उन्ही-की सहायता से इन्होने दस्युओ के सैकडो मजवूत किलो को तोड कर धूल मे मिला दिया और समग्र दासो को पहाडो की

गुफाओ मे खदेड दिया। इद्र की इस सहायता से आर्यों की विजय-वैजयती सर्वत्र फहराने लगी।

आर्य-जनता के आश्चर्य की सीमा न थी जब उन्होने अपने ही विस्मय-विस्फारित नेत्रो से देखा कि जिनकी अस्थि से वज्र तैयार किया था उन्ही ब्रह्मवेत्ता महर्षि दधीच आथर्वण का हृदय कितना सुकुमार और कोमल था।

: ११ :

ब्रह्मज्ञानी का रूप

१

ब्रह्मज्ञानी के लिए यह ,जगत् मृगमरीचिका है। प्यासे मृग के नेत्रो के सामने पानी से भरा हुआ जलाशय दीख पडता है। वह उसकी खोज मे छलागे भरता है, परतु जब वह उस जलाशयवाले स्थान पर पहुचता है, तब वहा उसे बीहड वीरान उसके उद्योगो की हँसी उडाता हुआ मिलता है। ससार के विषयो मे रमनेवाले जीवो की भी दशा इसी प्रकार है। ससार के समस्त पदार्थ आरभ मे ही सुखद प्रतीत होते हैं, परतु उनका अन्त सदा दु खद ही होता है और इसलिए वे 'आपात मधुर' कहे जाते है। इन विषयो के सेवन का परिणाम विषमय होता है। यही कारण है कि ब्रह्म की सत्ता को प्रत्यक्ष करनेवाले सत जगत् के किसी भी पदार्थ मे नही रमते, लोभ-मोह से वे कोसो दूर रहते हैं, काम को वे पास फटकने नही देते, विशाल महलो को छोडकर वे झोपडियो मे रहते है और मस्त पडे रहते हैं। परतु विशाल वैभव को भोगनेवाले लक्ष्मीपतियो को यह विश्वास नही होता कि ससार मे ऐसा भी निरीह जीव कही सास लेता हुआ अपना जीवन आनद से बिताया करता है।

महाराज जानश्रुति पौत्रायण को भी विश्वास न होता था कि ब्रह्मवेत्ता रैक्व केवल गाडी मे निवास करते हुए अपना जीवनयापन करते होगे।' उन्होने अपने विशाल साम्राज्य मे

ऐसा निस्पृह व्यक्ति नही देखा था, जिसने घरवार से नाता तोड-कर गाडी को ही अपना घर वनाया हो, परतु अपनी ही आखों से ऐसे विना घरवारवाले सत को देखकर उनके हृदय मे आश्चर्य की सीमा न रही।

जानश्रुति अपने समय के, उपनिषद्-युग के, एक माननीय महीपाल थे। वे प्रसिद्ध राजा जन श्रुति के पौत्र थे। उनके जीवन का एक ही महान् व्रत था—अतिथियो की सेवा। वह वहुत ही श्रद्धा के साथ आदरपूर्वक योग्य पुरुपो को वहुत दान दिया करते थे। अतिथियो के भोजन के लिए उनके महल मे प्रतिदिन नाना प्रकार के स्वादिष्ट पक्वान्न तैयार किये जाते थे। यज्ञो मे वडी दक्षिणा देने के कारण उनकी वडी ख्याति थी। वह चाहते थे कि प्रत्येक नगर और गाव मे रहनेवाले ब्राह्मण, साधु-सत तथा निर्धन जन मेरा ही दिया हुआ अन्न खाये तथा मेरे ही वनाये हुए मकानो मे रहे। इसलिए उन्होने अपने विशाल साम्राज्य मे सर्वत्र धर्मशालाए वना रखी थी तथा अन्नसत्र स्थापित कर रखे थे, जहा अतिथियो के ठहरने तथा भोजन करने का सुप्रवन्ध था। दिन-रात के चौवीसो घटो के भीतर जव कभी और जितने अतिथि आते उनका उचित सत्कार वहा किया जाता। जेठ महीने की जलती दुपहरी अति-थियो को वृक्षो की शीतल छाया के नीचे राजा की सेवा से सतुष्ट लेटे पाती तथा माघ की आधी रात का कडकड़ाता जाडा अभ्यागतो को धर्मशालाओ के भीतर ऊनी कवलो से लिपटकर सुख की नीद सोते हुए पाता। राजा इस अन्न-दान तथा अतिथि-सत्कार से नितात सतुष्ट था। वह समझता मेरा जीवन अव सफलता के शिखर पर पहुच गया है। उसे कोई कामना शेष

न रही, ससार की किसी भी वस्तु की चाह बाकी न थी।

पर ब्रह्मानद का सुख जगत् के समस्त सुखो से बढकर है। राजा को इस तथ्य की शिक्षा देने का दयालु देवताओ तथा ऋषियो ने विचार किया। वे हस का रूप धारणकर राजा के महल के ऊपर से रात के समय उडकर जा रहे थे। पिछले हस ने आगे उडनेवाले हस से कहा, "भाई भल्लाक्ष, तुम जानते हो कि जानश्रुति पौत्रायण का तेज दिन के समान सर्वत्र फैल रहा है। कही उसे स्पर्श न कर लेना। कही वह तुम्हे स्पर्श कर लेगा तो वह तेज तुम्हे तुरत भस्म कर देगा। अतिथि की उदरज्वाला को शात करनेवाले महापुरुष के तेज की महिमा अवर्णनीय है। मैं तुम्हे स्मरण दिला रहा हू। हम लोग इस समय उसी जानश्रुति के महल के ऊपर से उडे चले जा रहे हैं। रात का समय है। कही तुम्हारी यह गलती महान् अनर्थ का कारण न बने।

आगे उडनेवाले हस ने तिरस्कार की हँसी हँसते हुए कहा, "भाई श्वेताक्ष, तुमने आज मुझे बडी विचित्र बात सुनाई। मुझे जान पडता है कि उस गाडीवाले रैक्व की कीर्ति अभी तक तुम्हारे कानो तक नही पहुची है। यदि तुमने वह कीर्ति सुनी होती, तो इस आपात-मनोहर घटना का वर्णन करने से तुम्हे सकोच अवश्य होता।"

श्वेताक्ष ने विस्मय के स्वर मे पूछा, "भाई, वह गाडीवाला रैक्व कौन है? उसका आचरण कैसा है? वह कहा रहता है? गाड़ी मे रहना और महल मे रहनेवाले राजा से स्पर्धा करना! यह बात सचमुच विलक्षण है।"

भल्लाक्ष बोला, "भाई, रैक्व महान् ब्रह्मवादी हैं। वे सुख-दु:ख

मे एक समान, शीत-घाम को एक भाव से सहनेवाले, सब प्राणियों के हितचितन मे निरत सिद्ध पुरुप है। ससार की माया उन्हे तनिक भी स्पर्श नही करती। पक्के अनिकेतन हैं। उनके रहने का कोई अपना स्थान नही है। वैलगाडी मे ही वे रहते हैं। उनकी महिमा का वर्णन करना असभव है। जगत् की प्रजा जितने शुभ कार्यों का संपादन करती है उनका समग्र फल इन्ही रैक्व को प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार जूए के खेल मे 'कृत' नामक पासा जीतता है और उसके नीचे के पासो—त्रेता, द्वापर, कलि का फल उसे ही प्राप्त हो जाता है, रैक्व का विलक्षण प्रभाव भी वैसा ही है। वह रैक्व जिस जानने योग्य वस्तु को जानता है उस वस्तु को जो कोई पुरुप जान लेता है उसे भी रैक्व के समान ही सव प्राणियो के शुभ कर्मों का फल स्वत प्राप्त होता है। मैं उसी ब्रह्मवादी रैक्व के विषय मे यह वात कह रहा हू।

... ...

रात अभी अधिक नही हुई थी। महल की ऊची अटारी पर महाराजा जानश्रुति अभी जाग ही रहे थे। हसो की वोली वे जानते थे। भल्लाक्ष की वाते सुनते ही उन्हे वडा ही आश्चर्य हुआ। अपने शोभन कार्यो के फल पर उन्हे पूरा विश्वास था। उन्हे अपने हृदय मे दृढ विश्वास था कि उनकी कीर्ति से वढकर किसी प्राणी की कीर्ति हो ही नही सकती। उनके हृदय पर सचमुच एक वडी भारी चोट पहुंची, जव उन्होंने अपने समान ही नही, प्रत्युत अपने से भी वढकर प्रभावशाली व्यक्ति की महिमा सुनी। सुनते ही विचारने लगे—"यह रैक्व कौन हैं? कहां इनका निवास है? चिंता के मारे राजा को नींद नही

आई। पलको पर प्रभात हो आया। उषा की स्वर्णमयी आभा प्राची क्षितिज पर छिटकने लगी। ससार मे स्फूर्ति का स्रोत बह चला, परतु चिंताशील जानश्रुति के हृदय मे आलस्य का तथा विषाद का अब भी साम्राज्य बना हुआ था। बदीजन बडे मीठे शब्दो मे राजा को जगाने लगे। बदीजनो की यह स्तुति-पद्धति प्रत्येक सबेरे राजा के आनद का साधन बनती थी, परतु आज उसे यह उपहास-सी प्रतीत होने लगी। राजा ने इन स्तुतिपाठको को बुलाकर कहा, "आज यह रोज का राग अलापना छोडो। आज मै उस गाडीवाले रैक्व से भेट करना चाहता हू। उसे खोज निकालो।"

बदीजनो ने बडी उत्सुकता से पूछा, "महाराज, ये रैक्व कौन है ? कहा रहते हैं ? उनका आचार कैसा है ? क्या कारण है कि आप उत्सुक चित्त होकर उनसे भेट करने की अभिलाषा रखते हैं ?"

जानश्रुति की भी इस विषय मे अभिज्ञता विशेष न थी। उन्होंने रात के समय हसो के वार्तालाप से जिन बातो का परिचय प्राप्त किया था, वे बाते कह सुनाई। बदीजनो को सतोप तो नही हुआ, परतु उसी सामान्य सकेत के बल पर इस असामान्य पुरुष के खोजने मे वे दत्तचित्त से लग गये।

२

किसीको ढूढ निकालना भी एक सामान्य व्यापार नही होता। इस कार्य मे वही प्रवृत्त हो सकता है, जिसे उतनी योग्यता प्राप्त होती है। समान-धर्मा पुरुप एक दूसरे की खोज भली-भाति कर सकते हैं। परतु कहा राजसभा मे चाटुकारी की विद्या मे चतुर बदीजन और कहा ब्रह्मविद्या मे विद्वान् सिद्ध पुरुप को

खोज। उनसे सफलता की आशा करना ही सफलता का उपहास था। प्रभु की आज्ञा थी। उन्होने रैक्व को जन-कोलाहल से व्याप्त नगरो तथा ग्रामो मे खोजा, परतु कही पता नही चला। हताश होकर वे लौट आये और असफलता की सूचना अपने स्वामी को दी। राजा ने अब उन्हे समझाकर भेजा— जाओ उन स्थानो को जहा ब्रह्मवादी निवास करते है। ढूढो पावन सरिता के उन तीरो को, जहा वृक्ष की शीतल छाया मे वे शात मन से ध्यान मे निमग्न रहते है। ढूढो उन रमणीय तपोवनो को, जहा वे प्रकृति के अनुशासनो को भी अपने वश मे कर आत्मा के साक्षात्कार मे लीन रहते है।

महाराज जानश्रुति का सकेत बिल्कुल ठीक था। वदीजनो ने इस बार यत्न किया और इस यत्न मे वे सफल-मनोरथ निकले। दूर-दूर खोजने के बाद उन्होने नदी के किनारे बैल-गाडी के नीचे बैठे हुए अनासक्तरूप से अपने शरीर को खुज-लाते हुए एक तापस को देखा। पहचानते उन्हे विलम्ब न न लगा। स्थान की एकातता, गाडी मे निवास, मुख की प्रसन्नता से उन्हे विश्वास हो गया कि आज वे अपनी खोज मे सफल हुए हैं। सामने बैठनेवाले ही व्यक्ति रैक्व थे, परंतु निश्चय करने के लिए उन्होंने पूछा, "भगवन्, क्या गाडीवाले रैक्व आप ही हैं।" ऋषि ने कहा, "हां, वह व्यक्ति मैं ही हू।" सेवको के द्वारा यह शुभ समाचार पाकर महाराज जानश्रुति स्वय महर्षि के दर्शन के लिए गये। दक्षिणारूप मे उन्होने छ: सौ गायें, सोने का हार तथा खच्चरियो से जुता हुआ रथ (अश्वतरी रथ) साथ ले लिया। महर्षि को समर्पण कर बडे विनम्र शब्दो मे उन्होने प्रार्थना की, "हे भगवन्, आप उस देवता का उपदेश

दीजिये जिसकी आप उपासना करते है ।"

ऋषि के क्रोध का ठिकाना न रहा । अनश्वर तत्त्व के लाभ के लिए नश्वर पदार्थों का समर्पण ! ब्रह्मविद्या की उपलब्धि श्रद्धा, विश्वास तथा नम्रता से होती है, मूल्यवान् द्रव्यो के दान से नही । उन्होने क्रुद्ध होकर कहा, "अरे शूद्र, ये गाये, यह रथ, यह हार, तुम्हारे ही पास रहे, मुझे इनकी आवश्यकता ही क्या ? इन पदार्थों के बल पर क्या तू मुझसे ब्रह्मविद्या सीखना चाहता है ? तुझे राजा होने का गर्व है क्या ? दूर हट यहा से !"

३

जानश्रुति के लिए यह अनभ्र वज्रपात था । विना बादल आकाश से जैसे वज्र गिरे, राजा भी उन वचनो से उसी प्रकार चकित हो उठे । वे उलटे पाव घर तो लौट आये, पर 'शूद्र' सबोधन सुनकर उनके विस्मय का ठिकाना न रहा । महर्षि ने उन्हे शूद्र क्यो कहा ? वे तो क्षत्रिय राजन्य ठहरे, जनश्रुत के उज्ज्वल वश को सुशोभित करनेवाले मानी महीपति । शूद्र को ही ब्रह्मविद्या के उपदेश का निषेध शास्त्र करता है और ठीक ही करता है । अधिकारी को ही विद्यादान का विधान है । जिसे किसी विषय के ग्रहण करने की क्षमता न हो उसे उसका उपदेश क्या कभी सफल हो सकता है । ब्रह्मविद्या से वढकर सूक्ष्मविद्या हो ही क्या सकती है ? उसके लिए तप की, श्रद्धा की, सात्त्विक भाव की अवाश्यकता उसके श्रोता मे होती है । उच्च मानसिक विकासवाला व्यक्ति ही उसे हृदयगम कर सकता है तथा उससे लाभ उठा सकता है । उपनयन से रहित शूद्रो के लिए इसीलिए वेद के श्रवण का अधिकार नही है ।

जान पडता ह कि महात्मा रैक्व ने मेरे लिए 'शूद्र' शब्द का प्रयोग यौगिक अर्थ मे किया है। हसो के वचन सुनकर मैं शोक से आक्रात हो गया। रैक्व की महिमा सुनकर मेरा चित्त द्रवीभूत हो गया था, इसीलिए रैक्व ने इस शब्द का प्रयोग मेरे लिए किया है।

इस विचार से राजा का चित्त कुछ शान्त हुआ। ब्रह्मविद्या की प्राप्ति की लालसा ने उनके चित्त मे स्फूर्ति भर दी। वे पुन ऋषि के पास गये। इस बार उन्होने दान की राशि द्विगुणित कर दी। जानश्रुति ने अपना भक्तिनम्र मस्तक ऋषि के सामने झुकाया और सहस्र गाये, सोने का हार, अश्वतरी रथ, तो दिया ही साथ-ही-साथ अपनी प्यारी पुत्री को विवाह के निमित्त उन्हे समर्पण किया। उस गाव को, जिसमे उनका निवास था, ऋषि को दे डाला। रैक्व तो स्वय अकिंचन तथा अनिकेतन ठहरे। उन्हे इन वस्तुओ की आवश्यकता ही क्या थी ? परतु राजा के आग्रह पर उन्हे ग्रहण करना ही पड़ा। स्नेही चित्त के आग्रह का उल्लंघन भी तो अधर्म ही है।

महर्षि रैक्व 'सवर्ग विद्या' के उपासक थे। उन्होने इस विद्या के मूल तत्त्वो का उपदेश देना आरभ किया, 'सवर्ग' शब्द का अर्थ है सवर्जन, सग्रहण अथवा सग्रसन, वह वस्तु जो अन्य पदार्थो को अपने मे मिला लेती है। यह 'सवर्ग' वायु ही है। जब अग्नि बुझता है, तब वह वायु मे ही लीन हो जाता है। जब सूर्य अस्त हो जाता है, तो वह वायु मे ही लीन होता है। चन्द्रमा की भी अस्त होने पर यही दशा होती है। इस विश्व का मूल तत्त्व 'वायु' ही है। विश्व मे जितनी गति होती है वह वायु का ही कार्य है। यह सत्य बात है कि सूर्य और चन्द्र अस्त

हो जानेपर अपने रूप को धारण ही किये रहते है, परतु उनके अदर्शन का कार्य वायु के ही कारण होता है। इसी प्रकार जब जल सूख जाता है, तब वह वायु मे ही लीन हो जाता है। जो घटना ब्रह्माण्ड मे घटित होती है, इस पिंड मे भी वही है। प्राण ही सवर्ग है। जब मनुष्य सोता है, तब उसकी वाग् इद्रिय, चक्षु, श्रोत, मन प्राण मे ही लीन हो जाती है। समस्त इद्रियो मे प्राण ही सर्वश्रेष्ठ है। दूसरी इन्द्रियो के चले जाने पर पुरुप अपना कार्य निर्वाह करता रहता है, परतु प्राण के निकलते ही उसके समस्त व्यापार रुक जाते हैं, वह निश्चेष्ट हो जाता है। इस प्रकार समस्त इद्रियो मे 'प्राण' की ही महत्ता है। दो ही सवर्ग हैं। देवताओ मे वायु और इद्रियो मे प्राण। ये दोनो सवर्ग ब्रह्म के ही रूप हैं। इन दोनो की उपासना ब्रह्म की ही उपासना है। अन्न-दान से उत्पन्न होनेवाला फल क्षणभगुर होता है, परतु ब्रह्म की उपासना का फल अनश्वर होता है। उससे सद्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।"

राजा जानश्रुति की अभिलाषा पूर्ण हुई। रैक्व का उपदेश सुनकर उनकी कामनावल्ली फलसम्पन्न हो गई। अनिकेतन मुनि के ज्ञान ने महल मे रहनेवाले सम्राट् के नेत्रो को खोल दिया। राजा का ज्ञान-नेत्र इस उपदेश से खुल गया और उन्होने रैक्व की कृपा से ब्रह्म के स्वरूप का परिचय पाया।

: १२ :

ज्ञान की गरिमा

१

दो विभिन्न शक्तियो के घात-प्रतिघात से वह अनत-रूप विचित्र वस्तु अपनी स्थिति बनाये हुए है, जिसे हम 'ससार' नाम से पुकारते हैं। एक शक्ति इसकी मर्यादा को छिन्न-भिन्न कर, एक साथ मिले हुए अवयवो को अलग-अलगकर, इसे टुकडे-टुकडे करने के लिए उद्योगशील है, दूसरी शक्ति इसके छिन्न-भिन्न अवयवो को भी एक साथ जोड उसे एकता के सूत्र मे बाधने के लिए उद्यत है। यदि जगत् की स्थिति के लिए पहली शक्ति नितात घातक है, तो दूसरी शक्ति नितात उपकारक है। एक का नाम है आसुरी शक्ति और दूसरी की सज्ञा है—दैवी शक्ति। इन दोनो का रगडा-झगडा बड़ा पुराना है। कभी आसुरी शक्ति दैवी शक्ति को परास्त कर अपनी प्रभुता जमाती है, तो कभी दैवी शक्ति आसुरी को अपने चगुल मे दवाकर अपना प्रभाव फैलाती है। इन दोनो के सघर्ष मे ही हमारे विचित्र जीवन का रहस्य छिपा हुआ है।

एक समय देवताओ ने असुरो पर विजय प्राप्त की; मायावी असुरो की सारी माया देवताओ के सात्त्विक बल के सामने परास्त होकर वालू की भीत के समान ढेर हो गई। जिसे देखिये वही देवता इस विजय पर अखर्व गर्व से, वडे अभिमान से, अपनी छाती फुलाये हुए चल रहा था। अग्निदेव

का यह अहकारी आग्रह था कि उन्हीकी दहन-शक्ति ने असुरों के पराक्रम को तिनके के समान जलाकर राख बना दिया था। वायुदेव की हुकारभरी गर्जना थी कि उन्हीकी ग्रहण-शक्ति ने असुरो की राज्य-लक्ष्मी को ग्रहण कर उन्हे राह-चलता भिखारी बना दिया था। परतु सबसे अधिक अहकार फूट रहा था वज्रबाहु इद्र की महनीय उक्तियो मे। इद्र की यह गर्वभरी वाणी थी कि उन्हीके वज्र ने असुरो की रीढ तोड दी थी। अब वे अपना काला मुह अपने हाथो से छिपाये पर्वतो की अधेरी गुफा मे जा छिपे थे। मिथ्याभिमान से देवताओ के पैर पृथ्वी पर नही पडते थे।

देवताओ की यह भारी भूल थी। इस विश्व मे देवताओ से भी बढकर एक असीम अखड अनत सत्ता है, जिसकी देखरेख में यह विश्व समान नियम से चल रहा है, पूरब क्षितिज पर सविता नित्य प्रात काल उदित होता है, अपनी किरणो को भूतल पर फैलाता है, घने अधकार को और प्राणियो के आलस्य को दूरकर प्राणीमात्र को कार्य मे प्रवृत्त करता है। नित्य रात के समय चद्रमा अपने नियमित समय पर उदय लेता है, सतप्त प्राणियो के हृदय को आह्लादित करता है और अनन्तर अस्त हो जाता है। दिन के बाद राते आती है और रातो के बाद दिन। ऋतुओ के प्रकट होने का क्रम तनिक भी नियम को नही लाघता। ग्रीष्म के दु खद दिनो की गर्मी पावस की वर्षा से शात होती है और हेमन्त की लम्बी रातो का जाडा वसन्त के उदय होते ही छिप जाता है। विश्व का यह एकरस नियमित रहना जिसके द्वारा होता है वही परमेश्वर, परमात्मा, परब्रह्म है। देवता भी इसी परम शक्तिमान् सच्चिदानद की

आशिक शक्तियो के प्रतीकमात्र हैं। परंतु इस परमात्मा को विल्कुल भुलाकर देवताओ ने समझा कि वे ही इस विश्व के नियामक है, जय और पराजय उन्हीकी अगुलियो पर नाचते हैं। ससार को वे ही अपनी इच्छा से इधर-से-उधर नचाया करते है।

२

झूठा अभिमान ही असुरता की पक्की पहचान है, और अभिमानहीनता देवता की। अपने पराक्रम के गर्व मे आकर प्राणी भूल जाता है कि किसी भी कार्य का वास्तव मे प्रेरक सर्वशक्तिमान् परमात्मा है, प्राणी तो उसके हाथ की निरी कठ-पुतली है। वह जिधर घुमाता है, उधर ही घूमता है। जिस जगन्नियता की आज्ञा के विना पेड का एक पत्ता भी नही हिलता, भला प्राणियो मे वह सामर्थ्य कहा कि उसकी आज्ञा के विना वह एक तिनका भी तोड सके? परतु मोहमदिरा की मस्ती मे झूमनेवाला जीव कभी अपने उस अतर्यामी को नही जानता। अत वह फल लूटने की वाहवाही की पिटारी अपने ही सिर रखने के लिए तैयार होता है। यही है उसका मिथ्या अभिमान—झूठा गौरव। वह नही जानता कि यही ससार की समस्त बुराइयो की जड है—समस्त अनर्थो का कारण है। परमात्मा ने तो ससार की प्रतिष्ठा के लिए असुरो का सहार अपनी शक्ति से किया था, परतु देवता इस विजय पर फूले न समाते थे।

पुत्र की काली करतूत देख पिता का कोमल हृदय उद्विग्न हो उठता है। विजय होने पर तो सत्पुरुषो के मस्तक नम्र हो जाते हैं, हृदय दया से पसीज जाते है, परतु यहा फल एकदम

उलटा ! विजय का नशा देवताओं के सिर पर इतना अधिक चढा था कि वे भगवान् को भी भूल गये, पर भगवान् दयालु ठहरे। उन्हे यह प्रतीत होने लगा कि यदि यह मिथ्याभिमान दृढ हो गया तो असुरो के समान देवताओ का भी सर्वनाश एक दिन अवश्य हो जायगा। अत इस अहकार के भाव को देवताओ के हृदय से दूर भगा देने के लिए परमात्मा ने अपनी लीला से एक अद्भुत यक्ष का रूप आकाश मे प्रकट किया। उस रूप को देखकर देवताओ के चित्त आश्चर्य से चकित हो उठे। उन्होने अपनी समस्त इद्रियो की शक्तिया उस रूप के जानने मे और पहचानने मे लगा दी, परतु उस यक्ष—अत्यत पूज्य—को पहचानने का उनका सारा श्रम निष्फल हुआ। देवताओ की अभिमानभरी दृष्टि उस दिव्य पुरुप को देखकर भी पहचान न सकी।

उद्योग मे हार वैठना कापुरुषो का काम है। असुरो के प्रबल प्रताप पर विजय पानेवाले देवता भला एक साधरण-सी चीज के पहचानने मे पराजय कैसे मानते ? सलाह कर उन्होने 'अग्नि' से प्रार्थना की—भगवन्, आप हमारे अग्रगामी होने से अग्नि है, होम को अविलव वहन करने से 'वह्नि' है, समस्त प्राणियो को जानने के कारण आप 'जातवेदा' है, हम लोगो मे सवसे अधिक तेजस्वी हैं। जव आपकी ज्वालाए धू-धू करती आकाश मे उठती है तव किसकी शक्ति है कि उस ताप को सह सके ? कृपया इस यक्ष का परिचय पाकर हमे वतलाइये कि यह कौन है ?

देवताओ की मधुर प्रार्थना से फूलकर अग्निदेव उस

विचित्रकाय यक्ष के सामने आये और उसे घूर-घूरकर देखने लगे।

"आप कौन हैं ?" यक्ष ने विस्मित होकर पूछा।

"मैं हू अग्नि, सवका अग्रणी। मैं हूं जातवेदा, समस्त वस्तुओ का ज्ञाता"—अग्नि ने गर्वीले शव्दो मे अपना परिचय दिया।

आप केवल नामधारी है अथवा शक्तिधारी भी ?'

"मेरी शक्ति को कौन नही जानता ? जगत् के समस्त पदार्थों के जलाने की शक्ति मुझमे है। जव मैं प्रभा से चमकने लगता हू तव मेरी ज्वाला के सामने विशालकाय प्रासाद क्षण-भर मे जल-भुनकर सफेद राख की ढेरी वन जाते है, कठोर पत्थर भी मेरी ज्वाला मे पडकर पिघल उठता है, सघन जगल पलक मारते ही काले कोयलो का एक ढेर वन जाता है।" इतना कहते-कहते अग्निदेव की शिखा आकाश मे उठने लगी।

"तव इस तिनके को जलाइये"—यक्ष ने कहा। अग्निदेव वडे वेग से उसके पास गये और चाहा कि इस नि सार, निर्जीव तथा नीरस तृण को एक झपके मे झुलसा दू। परतु उनका सारा क्रोध कौतुक के रूप मे वदल गया, जव उन्होने आख खोल-कर देखा कि लाख उद्योग करने पर भी वह तिनका उसी प्रकार जमीन पर पडा था। उस यक्ष को जानने मे अभिमानी अग्नि विफल हुए। हताश होकर हुताशन लौट आये।

३

देवताओ ने अग्नि की विफलता से अपना साहस नही छोड़ा। अग्नि से भी अधिक प्रभावशाली वायुदेव के पास पहुच-कर वे उनके हृदय मे उत्साह भरने लगे—"सतत गमन करने से आप 'वायु' कहलाते है और अतरिक्ष मे विचरण करने से

'मातरिश्वा। जगत् के समस्त पदार्थों पर आपकी शक्ति काम करती है। आपकी महिमा अवर्णनीय है। आपकी गर्जना से पर्वत दहल उठते है और पृथ्वी के पदार्थ चूर्ण-विचूर्ण हो जाते हैं। आप इतने वेग से वहते हैं कि पृथ्वी की धूलि को ऊपर उडाकर और अखिल दिड्मडल को लाल रग का वनाकर आकाश मे आप व्याप्त हो जाते है।"

प्रशसा के शब्दो ने वायु के उत्साह को दुगुना कर दिया और वे अपने रथ पर सवार होकर गर्जन-तर्जन करते हुए वडे वेग से यक्ष के पास पहुच गये। वायु के इस तुमुल गर्जन से जगत् स्तब्ध हो गया। जान पडा, इस विश्व को अपनी उदरदरी मे समेटनेवाला ससार का कलेवा करनेवाला, प्रलय आ धमका।

यक्ष ने आगतुक को आश्चर्य से देखकर पूछा, "आपका परिचय ?"

"मुझे लोग अनेक नामो से पुकारते है। सतत वहने से मै 'वायु' हू, और अन्तरिक्ष मे विचरण करने से 'मातरिश्वा' मेरी ही सज्ञा है।

"आपकी शक्ति ?"

"इस विश्वमडल मे कौन मेरी ग्रहणशक्ति को, पदार्थो के पकडने की शक्ति को, नही जानता ? वह पदार्थ कौन है, जिसे मैं ग्रहण नही कर सकता। वडे-वडे वृक्षो को पकडकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पटक देना मेरे वाये हाथ का खेल है। मेरा गर्जन सुन प्राणियो के कान वहरे हो जाते है। कठोर पर्वतो के ऊचे शिखरो को टूक-टूककर देने मे मुझे तनिक भी आयास नही करना पडता। मेरे सामने समुद्र का जल वासो ऊपर

उछलने लगता है और उसपर चलनेवाले जहाजो को एक हल्के झटके मे चूर-चूर कर देने मे मुझे देर नही लगती। कौन मेरे सामने सीधा खडा हो सकता है?'

वायु की गर्वोक्ति सुनते ही यक्ष ने एक तृण सामने रख दिया। वायु वड़े वेग से उसे ऊपर-नीचे, इधर-उधर पकडकर हटाने का उद्योग करने लगा, परतु वह तिनका अपनी जगह से तनिक भी न डिगा, जरा भी न हिला। वायु के आश्चर्य की सीमा न थी। इतनी शक्ति के प्रयोग करने पर भी वह पूर्ववत् अचल, अडिग और स्तब्ध वना रहा। वायुदेव का अभिमान चूर-चूर होकर विखर गया। वे उदास होकर झट लौट आये।

४

ज़ोर के आघात लगने पर उसका प्रतिघात भी उतना ही ज़ोरदार हुआ करता है। यक्ष के स्वरूप को जानने की विफलता देवताओ के कौतुक को भी उसी मात्रा मे वढाने लगी, जिस मात्रा में उनके उत्साह को। उनका कौतूहल भी उतना ही वढ गया जितना उनका जानने का उत्साह। वे अपने स्वामी इद्र के पास पहुंचकर प्रार्थना करने लगे—आप ज़न्म लेते ही सव देवताओ से शक्ति मे वढकर हैं। आपके वल के सामने पृथ्वी और आकाश काप उठते है। आपका उपकार क्या कभी भलाया जा सकता है? डोलनेवाली पृथ्वी को आपने स्थिर किया; कापनेवाले पर्वतो को आपने एक स्थान पर जमाया; इस दीर्घ अतरिक्ष को तथा आकाश को अपने उचित स्थान पर स्थिर किया। जिस समय वज्र धारणकर आप अपने भक्त आर्यगणो की सहायता करते हैं, तव काले दस्युलोग गहन पर्वतों की गुफाओ मे जा छिपते हैं, आपने अपने वज्र से छिन्न-भिन्न वृत्र,

शम्बर तथा रौहिण आदि भयानक दानवो को पृथ्वीतल पर सदा के लिए सुला दिया। आप हमारे अधीश्वर हैं। इस यक्ष के स्वरूप का कृपया पता लगाइये।

मघवा के आनद-सागर मे आदोलन हो उठा। अतीत के समस्त वीर-कार्य उनके नेत्रो के सामने झलकने लगे। आनद से गद्गद होकर वे कहने लगे, "मुझसे बढकर इस विश्व मे कौन है ? मेरा ऐश्वर्य अतुलनीय है—मैं इद्र हू। मेरा बल अपरिमित है—मेरा नाम मघवा है। वज्रहस्त विडौजा के ओज की केवल कथा से विश्व के प्राणी उद्विग्न हो उठते है। दुर्दान्त वृत्र को चूर्ण-चूर्ण कर भूतल पर ढेर कर देने का गौरव मुझे छोडकर किसे प्राप्त है ? मैं इस यक्ष के रहस्य का परिचय पाकर ही लौटूगा।

मघवा अपनी अभिमानभरी चाल से खडे हुए। विश्व अस्त-व्यस्त हो गया। पृथ्वी काप उठी। भूडोल की आशका से जगती-तल पर हडकप मच गया।

परतु इद्र के आगमन के साथ-ही-साथ यक्ष अतर्धान हो गया। सहकारियो का स्वभाव अन्य सहकारी के स्वभाव को वतलाने मे देर नही लगाता। अग्नि और वायु मे अभिमान की इतनी मात्रा है, तो इनके प्रधान सहयोगी इद्र मे कितनी होगी ? इद्र तो झूठे अहकार की सजीव मूर्ति ठहरे। उनसे सभापण करना भी घोर अनर्थ होगा। यही विचारकर यक्ष आकाश मे पलक मारते छिप गया। मघवा का अभिमान वायु के झोके से तोडी गई शाखाओ के समान चूर-चूर हो गया। यक्ष का रहस्य जानने की कामना द्विगुणित भाव से उनमे जाग उठी। वे लौटे नही, बल्कि यक्ष की भक्ति मे तन्मय हो गये।

५

आकाश मे जिस स्थान पर यक्ष अंतर्धान हो गये थे, ठीक उसी जगह् आकाश अचानक चमक उठा। जान पडा मानो हजारो विजुलियां एक ही क्षरण मे नभोमडल मे चमकने लगी हो। एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई—रमरणीय रमरणी रूप मे। उस सुदरी के शरीर से प्रभापुज चारो ओर फूट रहा था, दर्शको के नेत्र इस चमक-दमक के सामने चकाचौध हो गये। सुदरी का रूप नितात तेजस्वी था, काति सोने के समान चमक रही थी, वह थी दिव्य पवित्र तेज का मनोरम पुज।

भक्त के हृदय की ज्ञानपिपासा शात करने के लिए दयावती ब्रह्मविद्या सद्य प्रकट हुई। परमेश्वर की शक्ति उमा हैमवती का सद्य: उदय हुआ। इस परमसुदरी लावण्यमयी को देखकर इद्र ने निरभिमान भाव से अपना मस्तक नवाकर प्रणाम किया। देवी के सामने सरल भक्त का सिर आप-से-आप नत हो गया। उमा हैमवती ने मघवा के हृदय की सरलता समझ ली। इद्र का वह पुराना अहकार, सर्वशक्तिमान् होने का अभिमान, पानी के वुलवुले के समान फूटकर विलीन हो चुका था। ज्ञान के धारण करने की पात्रता उनमे आ गई थी।

उमा हैमवती ने यक्ष का परिचय देना आरभ किया—"जिसके स्वरूप को जानने के निमित्त देवता लोग अश्रात उद्योग करने पर भी जानने मे समर्थ नही हो सके हैं, वह यक्ष साक्षात् ब्रह्म है। असुरों पर विजय पाना उन्हीका कार्य है, आप लोग तो केवल निमित्त-मात्र हैं, परन्तु अपने अज्ञान के कारण आप लोगो ने उसी परमात्मा की अवहेलना की है। उन्हीकी विजय के कारण तो देवताओं को इतना गौरव प्राप्त हुआ है, परतु इस

रहस्य से आप लोग नितात अनभिज्ञ है।

"इस विश्व के मूल मे एक ही सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् पुरुष विद्यमान है। वह एक है, उसके समान या इससे वढकर किसी अन्य पदार्थ का सर्वथा अभाव है, सब प्राणियो के भीतर वह छिपा हुआ है, जिस प्रकार तिलो मे तैल, दूध मे घी, सोतो मे जल तथा अरणि मे आग विद्यमान रहकर भी हमारी इद्रियो के गोचर नही हैं, ठीक उसी प्रकार वह परम तत्त्व सवमे अनुस्यूत होने पर भी अगोचर है। सर्वत्र व्यापक है। सब प्राणियों के भीतर आत्मस्वरूप वही है—प्राणियो को नाना प्रकार की प्रवृत्तियो मे वही प्रवृत्त कराता है। कर्मों का साक्षात् नियामक है। सब प्राणियो का आश्रय है। साक्षी ज्ञानरूप, केवल तथा गुणो से हीन है।

"उसके कर्मों तथा शक्तियो से आप नितात अपरिचित मालूम हो रहे हैं। जगत् मे सर्व त्र व्यापक होने से वही 'विष्णु' है, जगत् की रक्षा करने के कारण वही 'गोपा' कहे जाते हैं (विष्णुर्गोपा अदाभ्य) जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय उनके ही अधीन हैं। साधारण-सी वात भी उनकी इच्छा के विना नही घटती। एक तिनका भी टस-से-मस नही होता। एक छोटा-सा पत्ता भी उनकी आज्ञा के विना नही हिलता। ऐसे परमतत्त्व की इतनी अवहेलना ! ससार की मर्यादा के निमित्त ही उन्होने आसुरी वल को दवाकर दैवी वल को प्रवल तथा विजयी वनाया है। इस नानात्मक जगत् के भीतर वही एक तत्त्व क्रियाशील रहता है, देवता लोग तो उन्हीकी विभिन्न शक्तियो के साक्षात् रूप है। एक होने पर भी नाना नामो से वे ही पुकारे जाते है—एक सद् विप्रा वहुधा वदन्ति, अग्नि यम मातरिश्वानमाहु । वह

तत्त्व वस्तुत एक ही है, परतु ज्ञानी लोग उसे ही अग्नि, यम तथा मातरिश्वा आदि अनेक नामों से पुकारते हैं।

"देवता लोग परमात्मा के अन्तर्यामी रूप को भली-भाति नही जानते, नही तो इस प्रकार झूठे गर्व के गड्ढे मे नही गिरते। जगत् के भीतर समग्र पृथ्वी, जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, दिक्- आदित्य आदि पदार्थों में वह रमता है, इनके भीतर स्थित रहता है, परंतु ये पदार्थ उसे नही जानते। ये उसके शरीरमात्र हैं। वही अमृत अन्तर्यामी भीतर से इनका नियमन करता है। प्राणियो के प्राण वाक् , श्रोत्र, मन, त्वक् , विज्ञान, रेतस् मे भी इसी प्रकार उसका निवास है। इनकी प्रेरणा वही किया करता है। वह स्वय अदृष्ट होने पर भी सबका द्रष्टा है, अश्रुत श्रोता है, स्वय किसीके द्वारा मनन न किये जाने पर भी सबका मननकर्ता है। अविज्ञात होनेवाला विज्ञाता है। उसको छोड़कर दूसरा न कोई द्रष्टा है, न श्रोता है, न मता है और न विज्ञाता है। वही अन्तर्यामी सत्य है, ऋत है, उससे भिन्न समस्त विश्व मिथ्या है। उसकी विस्मृति सकल अनर्थों की जननी है। वह निराकार होने पर भी सगुण है। मनुष्यों की मधुर बोली मे वही बोलता है, पक्षियो के कलरव मे वही चहकता है, विकसित पुष्पो मे वही हँसता है, पहाडो में वही ऊचा सिर उठाये खड़ा रहता है, झरनो मे वही झरता है। नदियो के कलकल प्रवाह मे वही बहता है। उसे पहचानिये, उसीकी शरण में जाइये। तभी आपका, देवताओ का तथा इस विश्व का कल्याण है।"

...　　　...　　　...

इद्र की भक्ति लहालहा उठी। ब्रह्म का परिचय पाकर

देवतामडली कृतकृत्य होगई। अग्नि, वायु तथा इंद्र के गौरव का रहस्य इसी घटना मे छिपा हुआ है कि देवताओ मे इन्होने ब्रह्म को समीप से स्पर्श किया तथा इन्होने ही ब्रह्म को पहले-पहल जाना। महिमा की कसौटी ब्रह्म का ज्ञान है, जगत् की विभूति नही। महान् वही है, जिसने महत्तम का, सबसे बढे-चढे शक्तिशाली भगवान् का, अनुभव किया।

●